ॐ

भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादकः—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती
ज्येष्ठ सम्वत् १९८५ ।

वार्षिक चन्दा २।

एक प्रतिका ।)

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देनेवाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी का व्यवहार मैनेजर भक्तिके नामसे होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर का लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	पृष्ठ
१. मंगलाचरण	२६५
२. चञ्चल मन [श्रीमती सुरत्न देवी	२६७
३. श्री कृष्ण चरित्र [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी]	२६९
४. नावालोपनिषद्	२७४
५. महात्माओं के वाक्य	२७६
६. आयुर्वेद शिक्षा [ले० श्रीपं रामरक्षपाल जी वैद्य शास्त्री	२७९
७. भक्ति [ले० श्री ब्रजकुमारी	२८३
८. भक्तों के चरित्र [सम्पादक	२८५
९. मानव धर्मसार	२९०
१०. भजन	२९३

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः।"

वार्षिक चन्दा २) एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष २ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, ज्येष्ठ पूर्णिमा सं० १९८५। { अङ्क ८

मङ्गलाचरण।

नमो भगवते श्रीसूर्याय आदित्यायाक्षि तेजसे।
नमो मिलाय भानवे विश्व हेतवे ते नमः॥ १

भगवान के लिये, श्री सूर्य के लिये, आदित्य के लिये, अक्षितेज के लिये, भानु के लिये और विश्व हेतु के लिये नमस्कार हो॥ १॥

नमः शिवाय देवाय ईश्वराय कपर्दिने।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये॥ २॥

शिव के लिये, देव के लिये, ईश्वर के लिये, कपर्दि के लिये, रुद्र के लिये, तुभ्य विष्णु के लिये, ब्रह्म लिये और सूर्य मूर्ति के लिये नमस्कार हो॥ २॥

उमां प्रभां तथा प्रज्ञां संध्यां सावित्रीमेव च।
विस्तारा मुत्तमां देवीं बोधनीम्प्रणमाम्यहम्॥ ३॥

उमा को, प्रभा को, सन्ध्या को सावित्री को, स्वाहा को, उत्तम देवी को और ज्ञानस्वरूप को प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥

काली विशुद्ध देहाय कालिका कारणाय ते ।
आदि मध्यान्त शून्याय चित्संस्थाय नमो नमः ॥ ४ ॥

विशुद्ध देह काली के लिये जगत् का कारण कालिका के लिये आदि मध्य और अन्त रहित के लिये और चैतन्य रूपी के लिये नमस्कार हो ॥ ४ ॥

एकाक्षराय रुद्राय अकाराय आत्मरूपिणे ।
उकाराय आदिदेवाय विद्यादेहाय वै नमः ॥ ५ ॥

एकाक्षर रुद्र के लिये, अकार के लिये, आत्म स्वरूप के लिये, आदि देव के लिये, ज्ञान जिसका देह है ऐसे के लिये नमस्कार हो ॥ ५ ॥

तृतीयाय मकाराय शिवाय परमात्मने ।
सूर्याग्निसोमवर्णाय यजमानाय वै नमः ॥६॥

तृतीय मकार के लिये, शिव के लिये परमात्मा के लिये, सूर्य, अग्नि और सोम रूप के लिये और यजमान के लिये नमस्कार हो ॥ ६ ॥

अग्नये रुद्ररूपाय रुद्राणां पतये नमः ।
ओंकाराय नमस्तुभ्यं सर्वज्ञाय नमो नमः ॥ ७ ॥

अग्नि स्वरूप के लिये, रुद्र रूप के लिये, रुद्रों के पति के लिये नमस्कार हो । ओंकार के लिये नमस्कार हो और सर्वज्ञ के लिये नमस्कार हो ॥ ७ ॥

सर्वाय च नमस्तुभ्यं नमो नारायणाय च ।
नमोहिरण्यगर्भाय आदिदेवाय ते नमः ॥ ८ ॥

सर्व के लिये नमस्कार हो, नारायण के लिये नमस्कार हो, हिरण्यगर्भ के लिये नमस्कार हो और आदि देव के लिये नमस्कार हो ॥ ८ ॥

नमः शिवाय रुद्राय प्रधानाय नमो नमः ।
नमः सोमाय सूर्याय भवाय भयहारिणे ॥ ९ ॥

शिव के लिये, रुद्र के लिये और प्रधान के लिये नमस्कार हो । सोम के लिये सूर्य के लिये, भव के लिये और भयहारी के लिये नमस्कार हो ॥ ९ ॥

नमोऽस्थिकाश्रिपतये उमायाः पतये नमः ।
महात्मने नमस्तुभ्यं प्रज्ञा रुद्राय वै नमः ॥ १० ॥

अम्बिका के अधिपति के लिये नमस्कार हो, उमा के लिये नमस्कार हो, महात्मा के लिये नमस्कार हो और प्रज्ञा के लिये नमस्कार हो ॥ १० ॥

चितये चिति रूपाय स्मृति रूपाय वै नमः ।
ज्ञानाय ज्ञानगम्याय नमस्ते संविदे सदा ॥ ११ ॥

चित् के लिये चिति रूप के लिए, और स्मृति रूप के लिएनमस्कार हो । ज्ञान रूप के लिए और ज्ञान गम्य के लिए और सदा ज्ञान स्वरूप के लिए नमस्कार हो ॥ ११ ॥

चञ्चल मन ।

[ले० श्रीमती सूरजदेवी भगवद्भक्ति आश्रम]

मनही गृहस्थी जाय बन घर मानले संसार को,
धारण करे वैराग्य मनही त्यागदे व्यवहार को
माला पकड़ले काठ की समझे पकड़ली ढाल को,
कोई सन्त मनही जानते हैं धूर्त मन की चाल को

यह मनुष्यों का मन बड़ा ही अद्भुत है और अड़ियल टट्टू है । मनुष्य जब तक इस अड़ियल टट्टू को साधा करने के लिए सद्गुरु की शरण नहीं लेता है तब तक यह उसका बहुत नाच नचाता है और कभी भी अपने ठीक पथ पर नहीं चलता है । यह मन ही अधोगति तथा अवनति का कारण है । यथा:-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषया सक्तं मुक्तये निर्विषयं स्मृतम् ॥

मन ही मनुष्यों के बंध और मोक्ष का कारण है विषयों में आसक्त मन बन्ध का हेतु है । निर्विषय मन मुक्ति का कारण है । मन की जितनी दौड़ है उतना ही संसार है, क्योंकि सारा संसार कल्पना मात्र है ।

"संकल्प विकल्पात्मकं मनः"

संकल्प विकल्प का नाम मन है । मनमें पानीकी लहरों की भांति संकल्प उठते रहते हैं । मन की दौड़ समाप्त होने पर ज्ञान दूर नहीं है । जब तक मन को अंकुश प्राप्त नहीं होता है यह जीव को अति दुःख देता है । एक ग्राम में एक यात्री बाहर से आ कर रहने लगा था । उसको निजी ग्राम में जाने की इच्छा हुई, शरीर निर्बल होने से वह पैदल नहीं चल सकता था । और टट्टू के अतिरिक्त कोई सवारी उस रास्ते से जा नहीं सकती थी । इसलिये उस विचारे ने अपने ग्राम जाने के लिये एक टट्टू खरीदा । परन्तु जब उसको चलाया तो मालूम हुआ कि वह अड़ता है । जब कभी उसको चलाया जाता था तभी अड़ जाया करता था, आगे चलता ही न था, बड़े जोर से हांका जाता, डण्डे लगाये जाते, खूब चिल्ल पुकार की जाती तब बड़ी मुश्किल से एक पैर आगे रखता परन्तु तुरन्त ही दो पैर पीछे हटकर अड़ जाता था । कैसा भी उत्तम सवार क्यों नहीं उस टट्टू को इससे अधिक नहीं चला सकता था । जितना आगे चलाया जाता था उससे दूना पीछे को हट जाता था । यदि एक दिन में एक कोस आगेको चले तो दो कोस पीछे सरक जाता था । टट्टू को लेकर यात्री की जान को बड़ी आफत लगी । अपने ग्राममें कैसे जाय ? यदि उसे बेचे तो कोई खरीदता नहीं क्योंकि, ग्राम वाले सब उस की आदत जानते थे और उसे अड़ियल टट्टू कहते थे । भला जान बूझ कर ऐसे टट्टू को कौन खरीदे । कुछ देर पश्चात् उस ग्राम का मुखिया उसको मिला और टट्टू का हाल सुनकर उसने यात्री से कहा । ' भाई ! मैं तुमको एक युक्ति बतलाता हूं उस

युक्ति से तू अपने ग्राम में पांच दिन में पहुंच जायगा। युक्ति यह है कि यदि तुझको उत्तर को जाना है तो दक्षिण की ओर टट्टू का मुख करके चला दिन भर में दक्षिण की तरफ एक कोस चलकर उत्तर को दो कोस चलेगा। इस प्रकार इस युक्ति से दो कोस पीछेको हटता और एक आगेको चलता हुआ एक दिन में एक कोस उत्तर को चलता हुआ पांच दिन में पांच कोस चल जायगा। यात्री मुखिया की बात मान कर पांच दिन में अपने ग्राम में पहुंच गया। यदि वह उसकी युक्ति नहीं मानता तो लाख उपाय करने पर भी अपने ग्राम में नहीं पहुंच सक्ता था।

पाठक गण! विचारिये यह यात्री कौन है और टट्टू कौन है? यात्री वही जीव है जो साम्राज्यपति राजपुत्र है परन्तु अनात्मपदार्थों के भाव से यात्री के भाव को प्राप्त हुआ है। उसका असली ग्राम पांच कोस दूर है अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय रूप पांच कोश परे आत्म स्वरूप रूपी ग्राम है। ग्राम पहुंचने के लिये मन रूपी अड़ियल टट्टू खरीदा है जो उसको अपने स्थान पर पहुंचाने के बजाय दूसरी जगह ले जाता है। मनुष्य अनेक उपाय करता है परन्तु टट्टू अड़ने से बाज नहीं आता है। और मनुष्य भी जानते है कि यह अड़ियल टट्टू रूपी मन नहीं मानता है परन्तु युक्ति नहीं कर जानते हैं। जब पूर्व पुण्य के प्रताप से तथा ईश्वर के अनुग्रह से मुखिया रूपी सद्गुरु के मंत्रोपदेश रूपी युक्ति से मन रूपी अड़ियल टट्टू को उलटी चाल चलाने के सिवाय अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त करने का और उपाय नहीं है। सुखस्वरूप परमात्मा की तरफ जब मन को ले जाते हैं तो जाता ही नहीं, जबरदस्ती चलाते हैं तो दुःख रूपी प्रपंच में दो पैर पीछे हट जाता है! यदि टट्टू को दुःख रूपी जगत् की तरफ मुख करके वैराग्य भाव में चलाया जाय तो अपनी प्रकृति के अनुसार सुख रूप परमात्मा की तरफ एक पैर स्वतः ही चलेगा। मन को यदि सीधा भगवान में लगायें तो नहीं लगता है। परन्तु जब दुनियां में दुःख देखता है तो वैराग्य करके पीछे हटता है और शनैः २ पंचकोशों में आजाता है इस दृष्टान्त के अनुसार ही ठीक संसार के प्राणियों का मन है। भगवान् ने कहा है:-

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद्दृढम्।

हे देव! यह मन बड़ा चंचल है, बलवान् है, जबर्दस्ती इन्द्रियों को मथने वाला है।

मन के मते न चालिये मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है ऐसा साधु कोई एक।
मन की गति है अटपटी चटपट लखी न जाय।
जो मन की खटपट मिटे तो चटपट ज्ञान विजाय।

अभ्यास और वैराग्य से अति चंचल मन भी वश में आजाता है।

यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते।
तस्मान्निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा॥

जिस हेतु मन के निर्विषय हो जाने का नाम ही मुक्ति कथन किया है, तिसी हेतु से मुमुक्षु पुरुषों को उचित है कि मनको नित्य ही निर्विषय करें।

निरस्तविषयासंगं सन्निरुद्धं मनो हृदि।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम्॥

विषयों के संग से रहित होकर जब मन हृदय में जिस काल में रुक जाता है तिसी काल में मन परम पद को प्राप्त हो जाता है। तावत्पर्यन्त मनका निरोध करना चाहिये यावत्पर्यन्त मन हृदय में नाश को नहीं प्राप्त होजाता है। मनके नाश हो जाने का नाम ही ज्ञान और मोक्ष भी है। अतः मुमुक्षु पुरुषों को मुक्ति देवी की गोद में बैठने के लिये मन का निरोध ही सर्व प्रथम कर्तव्य है।

श्रीकृष्ण चरित्र ।

गतांक से आगे ।

नामकरण संस्कार ॥

ब श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भाई नाम करण संस्कार योग्य हुए तब वसुदेव जी ने श्री गर्गाचार्य जोकि बड़े तपस्वी और यादवों के मुख्य पुरोहित थे उनके नामकरण संस्कारार्थ गोकुल में नन्द जी के घर भेजे । गर्गाचार्य नन्द जी के घर आए तो नन्द जी ने उनका यथेष्ट आदर सत्कार किया और भगवान् के समान जान कर उन का पूजन किया और मधुर वाणी से बोले कि, हे महात्मन् ! आप तो परिपूर्ण हो हम आप का पूजन किस प्रकार कर सकते हैं । हे भगवन् ! दीन गृहस्थों के कल्याणार्थ आप सरीखे महात्मा अपने आश्रमों से गृहस्थों के गृह पर जाते हैं । हे भगवन् ! आपने ज्योतिषशास्त्र का साक्षात् कथन किया है, जिस के पढ़ने से मनुष्य भूत, भविष्यत, और वर्तमान काल का वृत्तान्त जान सकता है । हे भगवन् ! आप ज्योतिष शास्त्र में परिपूर्ण हो अतः आप मेरे इन दोनों बालकों का नामकरण संस्कार कीजिए । गर्गाचार्य ने कहा कि जो तुम्हारे गुरु आचार्य हों उन से ही नाम करण कराइए । मैं तो इस जगत् में यादवों का पुरोहित हूं अतः यदि मैं इन बालकों का संस्कार कराऊंगा तो वह दुष्टात्मा कंस समझ जायगा कि यह बालक किसी यादव के हैं । अतः आप और किसी से नामकरण करा लीजिए । तब नन्द जी ने कहा कि एकांत स्थान में जहां ब्रजवासी भी इस बात को न जानें इन बालकों का संस्कार कीजिए । गर्गाचार्य ने नन्द जी की प्रार्थना स्वीकार करके एकान्त स्थान में स्वस्ति पाठ पढा । पश्चात् वह नन्द जी से बोले "कि यह रोहिणी का पुत्र अपने गुणों से सुहृदों को रमण कराएगा अतः इसका नाम " राम " रखता हूं । दूसरे यह बहुत बलशाली होगा अतः इस का नाम "बलदेव भी रखता हूं यह जो तुम्हारा दूसरा पुत्र है यह युग युग में अवतार धारण करता है । सत्युग में शुक्ल वर्ण त्रेता में लाल और द्वापर में पीत वर्ण हुआ है । अब इसने श्याम सुन्दर रूप धारण किया है । अतः इसका नाम श्याम सुंदर रखना चाहिए । इसका जन्म वसुदेव जी के घर में हुआ है अतः इस को वासुदेव भी कहेंगे । इस तुम्हारे बालक में अनंत गुण हैं जिनको ब्रह्मा, शिव, सनकादिक भी नहीं जान सकते । यह बालक गाय, गोपाल और गोपी इनको आनन्द देने वाला होगा । जो कोई तुम्हारे इस पुत्र से स्नेह करेगा उसका शत्रु लोग तिरस्कार नहीं कर सकते । यह तुम्हारा बालक गुण, कीर्ति, लक्ष्मी और और प्रताप में विष्णु भगवान् के समान है । गर्गाचार्य नन्दजी को इस प्रकार श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करके अपने आश्रम में लौट आए ।

विश्वरूप दर्शन ।

एक समय श्री कृष्ण जी अन्य गोपियों के बालकों के साथ खेल रहे थे । वहां श्री कृष्णचन्द्र मिट्टी खाने लगे । तब ग्वाल बाल कहने लगे कि आज

कृष्ण को इसकी माता से पिटवायेंगे और जाकर कहेंगे कि आज श्याम सुंदर ने मिट्टी खाई है। ऐसा विचार करके सब ग्वाल बालों ने माता यशोदा के पास आकर कहा कि आज श्रीकृष्ण ने मिट्टी खाई है। यह सुनकर यशोदा कृष्ण का हाथ पकड़ कर धमका कर कहने लगी कि बतला तैंने मिट्टी क्यों खाई? अरे! सब के लोग सुनेंगे कि कृष्ण मिट्टी खाता है तो सब कहेंगे कि यशोदा बड़ी कंजूस है अपने बेटे को खाने को भी नहीं देती वह बिचारा मिट्टी खाकर उदर पूर्ति करता है। सकल जगत के नियन्ता घट घट वासी भगवान, तो कर्तृत्व भोक्तृत्वादि गुणों से रहित हैं। वह सब कुछ करते हुए भी जल में कमलवत् असंग रहते हैं इसी लिये उन्होंने श्री गीता में स्पष्ट कह दिया है कि:-

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा

इस लिए उन्होंने यशोदा से कहा कि हे माता यह झूठ बात तुमको किस ने कही है! कदाचित् कोई बालक तुम्हारे पास आकर मुझको झूठा कलंक लगा दे तो इस में मेरा क्या अपराध है? तब यशोदा ने कहा कि मुझे तो तेरे परम मित्र श्रीदामा ने कहा है। श्रीकृष्ण जी कहने लगे, हे मैया! मैंने मिट्टी नहीं खाई है और यदि तुम को विश्वास न हो तो मेरा मुख देख लो। तब यशोदा ने कहा अच्छा दिखला अपना मुख। यदि तेरे मुख में मिट्टी लगी मिली तो देख तेरी कैसी पूजा करती हूं। यशोदा की बात सुन कर अनेक दुःखों के दूर करने वाले, अखंड ऐश्वर्यवान भगवान, और क्रीडार्थ मनुज तनुधारी बालक रूप श्रीकृष्ण ने अपना मुखारविन्द फैला कर यशोदा को दिखला दिया। तब तो यशोदा जी ने श्रीकृष्ण जी के मुख में स्थावर, जंगम, विश्व, अंतरिक्ष, दिशा, पर्वत, द्वीप, समुद्र, वायु, अग्नि चन्द्रमा, तारागण, जल, तेज, आकाशादि समस्त संसार को तथा उसी में व्रज भूमि और अपने आप को और कृष्ण को भी देखा तो यशोदा के मन में भ्रम उत्पन्न हुआ और अपने मन में विचारने लगी कि क्या मैं यह स्वप्न देख रही हूं? नहीं यह तो स्वप्न नहीं हो सकता, कारण कि स्वप्न तो सोता हुआ आदमी देखा करता है। तो फिर क्या यह परमेश्वर की माया है? नहीं २ यह तो माया भी नहीं हो सकती क्योंकि, माया होती तो और लोग भी देखते। तो क्या यह जिस प्रकार दर्पण में मुख दिखाई देता है ऐसे दिखाई दिया? क्या यह मेरी बुद्धि का भ्रम है! नहीं ऐसा भी नहीं हो सकता। क्योंकि ऐसा होता तो जैसे दर्पण में दर्पण दिखाई नहीं देता तैसे ही इस के मुख में यह पुत्र भी नहीं दिखाई देना चाहिए। तो क्या यह मेरे पुत्र का स्वभाविक ऐश्वर्य है? हां हां मुझे तो यही बात ठीक प्रतीत होती है। क्योंकि यह संसार जो किंचित् मन वाणी और वचन से अनायास पूर्वक भले पुकार विचार में नहीं आसकता, वह जिस के आश्रय है और जिस रीति से प्रतीत हो सकता है उस अचिन्तनीय स्वरूप को मैं बारम्बार नमस्कार करती हूं। इन व्रजराज के सम्पूर्ण धनकी अधिष्ठाता मैं हूं, यह कृष्ण मेरा पुत्र है और यह सब गोप, गोपिका तथा गाय बछड़े मेरे हैं यह सब माया का फेर था और उसी से मेरी बुद्धि भ्रम में पड़ी हुई थी। हे भगवन्! अब तुम्हारी कृपा से वह सब भ्रम दूर हो गया है। अब मैं आप की शरण हूं।

जब यशोदा जी को श्रीकृष्ण में इस प्रकार ईश्वर बुद्धि हो गई तब श्रीकृष्ण ने विचारा कि माता

तो परम गति को पहुँची अब मेरा लालन पालन कौन करेगा ? ऐसा विचार कर भगवान ने अपनी माया द्वारा यशोदा के मन से पुत्र में ईश्वर बुद्धि अलग कर दी। जिससे वह पुनः पुत्रत्व भाव मानकर श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्यभाव करने लगी।

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥

धन्य यशोदा माता धन्य ! वास्तव में यह तुम्हारे पूर्व जन्म में की हुई कठिन तपस्या का ही प्रभाव है। ऋग्, यजु, साम यह तीनों वेद, सांख्य और योग यह सब निरन्तर जिनकी महिमा को रात दिन गाते हैं उन श्रीकृष्ण को यशोदा पुत्र भाव से मानती है।

यमलार्जुन भंग

एक बार यशोदा जी प्रातः काल दही मथने लगीं इतने में श्रीकृष्ण की आंखें खुलीं तो रोरो कर मां मां पुकारने लगे। यशोदा का ध्यान दधी मथने में होने से उन्होंने श्रीकृष्ण के रोने का शब्द नहीं सुना। तब आप ही रोते रोते आए और मथानी को पकड़ कर कहने लगे कि मुझे दूध पिलाओ। नन्दरानी उन को दूध पिलाने लगीं इतने में ही चूल्हे पर रक्खा हुआ दूध उफनने लगा। तब वह ब्रजभूषण को गोद से उतार दूध संभालने को दौड़ी। इस से श्रीकृष्ण को क्रोध आया कि माता दूध को मुझ से अच्छा समझने लगी। यह सोच कर सब दही मही के पात्र फोड़ डाले और माखन की हंडिया उठा कर घर के पीछे को उलूखल पर बैठ कर अन्य सखाओं के साथ खाने लगे यशोदा दूध को चूल्हे से उतार कर आई तो क्या देखती है कि सब दही भूमि पर बिखरा हुआ है और दही के पात्र फूटे हुए हैं। माखन की हंडिया का भी पता नहीं। तब उन्होंने समझ लिया कि यह सब कौतुक श्याम सुंदर के हैं और हंस कर मन ही मन में कहने लगीं कि देखो काम का काम बिगाड़ा और माखन की हंडिया को भी लेकर कहीं सटक गया। घर से बाहर निकल कर देखा, तो घर के पीछे उखल के ऊपर सखा मंडली के साथ बैठे हुए माखन बांट २ खा रहे हैं। श्रीकृष्ण छड़ी हाथ में लिए माता को आती देख कर डर के मारे भाग निकले। यशोदा भी उन के पीछे हो लीं। परन्तु जिन को एकाग्रहोकर ध्यान लगाने वाले योगीराज भी नहीं ढूंढ सकते, तपस्वियों का मन जिन की गति को नहीं जान सकता यशोदा उन को कैसे पकड़ सकती थी। पश्चात् माता को दुःखित देखकर उन की पकड़ में आगए। अपराधी तो थे ही पकड़ते ही रोने लगे। अब यशोदा जी कृष्ण को पकड़ कर रस्सी से बांधने लगीं।

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥
तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥

जिस आदि पुरुष अविनाशी के बाहर, भीतर, आगे, पीछे कुछ भी नहीं है और जो पूर्ण अवतार है, जगत के अन्तर, बाहर तथा आगे पीछे रहता है और जो जगत् रूप है। इंद्रियों की जिन में गति नहीं है ऐसे अव्यक्त भगवान को पुत्र मान कर यशोदाजी रस्सी लेकर उखल से ऐसे बांधने लगीं जैसे

कोई साधारण मनुष्य को बांधता है। परन्तु उस समय वह रस्सी दो अंगल छोटी रह गई। तो यशोदाजी ने दूसरी रस्सी उस में जोड़ी वह भी दो अंगल छोटी रह गई। इस प्रकार सारे घर की रस्सियां यशोदा जी ने जोड़ ली परन्तु सब ही दो अंगल छोटी रह गई। यशोदा जी को बहुत श्रमित देख कर आप ही फिर बन्धन में आ गए।

एवं संदर्शिता ह्यंग हरिणा भक्त वश्यता।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे॥

ऐसे कष्ट हरने वाले भगवान् ब्रह्मा सहित विश्व जिनके आधीन है उन श्रीकृष्ण चन्द्र ने अपने को अपने भक्तों के वश में होना दिखाया कि, जो मेरे भक्त मुझको बांधना चाहें तो मैं बन्ध भी जाता हूं। मैं इस प्रकार से अपने भक्तों के वश में हूं।

नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात॥

भक्ति के देने वाले श्रीकृष्ण भगवान् से पुत्रके सम्बन्ध से जो प्रसाद गोपियों ने पाया वह प्रसाद न ब्रह्मा को मिला, शिवजी जो भगवान् की आत्मा हैं उनको भी प्राप्त न हुवा और लक्ष्मी जो सर्वदा भगवान् के हृदय में विराजमान हैं वह भी इस प्रसाद से वंचित रहीं।

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिका सुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्ति मतामिह॥

भगवान् कृष्णचन्द्र जैसे भक्तों को सहज में प्राप्त होते हैं ऐसे देहाभिमानी तपस्वी और देहाभिमान रहित आत्म ज्ञानियों को सहज में नहीं मिल सकते।

यशोदा जी तो कृष्णचन्द्र को बांध कर अपने काम धन्धे में लगगई। इतने में सर्वसामर्थवान भगवान् कृष्णचंद्र ने कुबेर के दो पुत्र जो नारद जी के शाप वशात् वृक्ष योनि को प्राप्त हुए थे उन के मुक्त करने का समय आया जान उनकी ओर कृपा की दृष्टि से देखा।

कुबेर के इन दोनों पुत्रों का नाम नलकूबर और मणिग्रीव था यह एक बार मदान्ध होकर स्त्रियों के साथ नग्न होकर जल क्रीड़ा कर रहे थे। कि इतने में वहां नारद जी आ निकले। स्त्रियों ने तो लज्जा वशात् वस्त्र धारण कर लिए परन्तु यह दोनों उसी प्रकार नारद जी के समक्ष में नग्न ही खड़े रहे। तब नारद जी क्रोध करके कहने लगे कि धन का मद मनुष्य की बुद्धि को नष्ट कर देता है जो अज्ञानी पुरुष धन के मद से अन्धे हो जाते हैं उन के लिए दरिद्रता ही श्रेष्ठ है। दरिद्री पुरुष सब प्राणियों को दुःख सुख में अपने समान देखता है क्योंकि वह अपने मन में विचार लेता है कि जिस प्रकार मुझको दुःख ने बाधा की थी इसी प्रकार औरों की करता होगा। जिस पुरुष के पांव में कांटा लगे वही दूसरे के पांव में कांटा लगने की पीड़ को जान सकता है कहा है:-

जिसके फटी न बिवाई।
वह क्या जाने पीड़ पराई॥

दरिद्री पुरुष का अहंकार, मद और सब प्रकार का अभिमान नष्ट हो जाता है और उस को जो कष्ट प्राप्त होता है वही उसको तपस्या के समान हो जाता है। दरिद्री मनुष्य सबको समान देखता है और दरिद्री को साधु महात्मा पुरुष भी मिल जाते हैं। जब वह दरिद्रता से दुःखित होता है तो साधु महात्मा

उस से कहते हैं कि अरे ! कृष्ण के नाम का रटन कर जो सब संसार के पालन पोषण करने वाला है। इस प्रकार से उपदेश द्वारा वह साधु महात्मा उसकी दरिद्रता को दूर करके उसको भगवान का भक्त बना देते हैं। धन से मदांध हुवा पुरुष अभिमानी होने के कार साधु महात्मा की संगत कर ही नहीं सकता अतः उसका तो कल्याण तीनों कालों में असम्भव है। इस लिये साधु पुरुषों को तो दरिद्री ही अधिक प्यारे हैं। कहा है:-

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम्।
उपेक्षैः किं धनस्तंभै रसद्भिरसदाश्रयैः॥

समचित्त और परमेश्वर के चरणानुरागी साधु महात्मा पुरुषों को दरिद्री ही प्यारा होता है। उनका लक्ष्मी के मद से उन्मत्त लोगों से प्रयोजन ही क्या ? इस लिए मैं इस दोनों को जो लक्ष्मी के मद से अन्धे हो रहे हैं इन का मद दूर करने के लिए शाप देता हूं कि यह सौ वर्ष तक वृक्ष योनि को प्राप्त रहें। पश्चात् इनको जब भगवान वासुदेव के दर्शन होंगे तब इन का इस शाप से विमोचन होगा और इनको कृष्णचन्द्र की भक्ति प्राप्त होगी। नारद जी इस प्रकार शाप दे कर चले गये और वह दोनों शाप वशात् यमलार्जुन वृक्ष हो गये। अब शाप की अवधी समाप्त हुई जान श्रीकृष्ण जी नारद जी के वचन सत्य करने के लिए उलूखल से बन्धे २ ही शनैः शनैः उन वृक्षों की ओर सरकने लगे। वह दोनों वृक्ष पास पास थे जब श्रीकृष्ण जी उन दोनों वृक्षों के बीच से निकलने लगे तो उलूखल को तिरछा करके उन दोनों वृक्षों के बीच में फंसा दिया और आगे हो कर बल पूर्वक एक झटका लगाया। उस समय दोनों वृक्ष जड़ से उखड़ कर भूमि पर गिर गए। उन वृक्षों में से नलकूबर और मणिग्रीव निकले और वह दम्भ को त्याग हाथ जोड़ प्रार्थना करने लगे :-

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः॥

हे कृष्ण ! हे कृष्ण !! हे महायोगिन ! तुम परम कारण रूप हो और स्थूल सूक्ष्म रूप जो आप हो उस रूप को ब्रह्मवेत्ता जानते हैं।

त्वमेकः सर्वभूतानां देहोस्वात्मेन्द्रियेश्वरः।
त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः॥
त्वं महान्प्रकृतिः साक्षाद्रजस्त्वं तमोमयी।
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्॥

सब प्राणियों के देह, प्राण, इंद्रिय, अहंकार के आप ही एक ईश्वर हो और सम्पूर्ण में व्यापक भगवान् काल रूप आप ही हो। आप ही महान् रूप हो। रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण और सूक्ष्म माया रूप सब तुम ही हो, देहों के विकार के जानने वाले साक्षी पुरुष आप ही हो।

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।
आत्मद्योत गुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः॥

नमः परमकल्याण नमः परममंगल।
वासुदेवाय शांताय यदूनां पतये नमः॥

हे वासुदेव ! सर्व के कर्ता और स्वयं प्रकाशित किए हुए गुणों से जिनकी महिमा बढ़ रही है, ऐसे ज्ञान स्वरूप आपको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं। हे परम कल्याण रूप ! हे परममंगलरूप ! हे भगवन् ! आप को नमस्कार है। आप के शान्त रूपको

नमस्कार है। हे वासुदेव! यदुकुलकी रक्षा करने वाले आप को बारम्बार नमस्कार है।

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां,
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोनः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवास जगत्प्रणामे,
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥

हे भगवन्! हमारी वाणी आप के गुणानुवादों को निरन्तर गाया करे, कान आप की कथाओं को निरंतर सुनते रहें, हाथ आप की सेवा और पूजा में लगे रहें, हमारा मन आप के निवास रूप जगत् को प्रणाम करता रहे और हमारी दृष्टि तुम्हारी साधु मूर्तियों के नित्य प्रति दर्शन किया करे। हे दीन बन्धु! हम बारम्बार आप से यही वर मांगते हैं। हे परिपूर्ण! हम आपके दासों के दास हैं! नारद जी की कृपा से हमको आप के दर्शन प्राप्त हुए हैं।

जब मणिग्रीव नलकूबर ने उलूखल से बंधे हुए श्रीकृष्ण जी की इस प्रकार प्रार्थना की तब श्रीकृष्णचंद्र ने उन को हंसते हुए कहा कि:-

साधूनां समचित्तानां सुतरांमत्कृतात्मनाम्।
दर्शनान्नो भवेद्बंधः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा

जैसे सूर्य के दर्शन से नेत्रों का अंधकार दूर हो जाता है ऐसे ही समान चित्त मुझमें निरन्तर मन लगाने वाले महापुरुषों के दर्शन से सब बन्धन कट जाते हैं। तुम्हारा जन्म मरण रूप संसार मुझ में प्रेम करने से छूट गया है। अब तुम अपने गृह को जाओ। तब वह दोनों भगवान् को प्रणाम करके उत्तर दिशा को चले गए।

"सूसा"

जाबालोपनिषद्।

हस्पति ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि प्राणों का स्थान क्या है? इंद्रियों का देव यजन क्या है? और सर्वभूतों का ब्रह्म सदन क्या है? अविमुक्त जीव सर्व प्राणोंका स्थान, इंद्रियों का देव यजन रूप तथा प्राणियों का सदन रूप है। इससे कोई भी स्थान जहा कोई भी जाय वहां यह जीव प्राणों का आश्रय स्थान, देवों का यजन रूप और ब्रह्मका निवास स्थान है ऐसा मानना। जब प्राणी के प्राण का उत्क्रमण होता है तब भगवान रुद्र तारने वाले ब्रह्मके सम्बन्ध में उपदेश करते हैं कि, अविमुक्त जीव करके प्राणी अमृत भाव को तथा मोक्ष भाव को प्राप्त होता है। इस लिए विमुक्त जीव की उपासना करना और उस का त्याग कभी न करना" ऐसे याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा है ॥ १ ॥

इसके पश्चात् अत्रि मुनि याज्ञवल्क्य से पूछने लगे। "इस अनन्त और अव्यक्त आत्मा का ज्ञान किस रीति से हो" तब याज्ञवल्क्य ने कहा "अविमुक्त जीव की उपासना करना और अव्यक्त ऐसा आत्मा जीव में ही रहा हुवा है"। तब अत्रि मुनि ने पूछा "जीव किस विषे रहा हुवा है?" तब याज्ञवल्क्यने कहा वरणा और नाशी नामकी दो शक्तियों में जीव रहा हुवा है"। अत्रि ने पूछा की वरणा क्या है और नाशी क्या है। याज्ञवल्क ने कहा कि जो शक्ति

इंद्रियों के किये हुए पापों को रोकती है उसे वरणा कहते हैं। ऐसे ही सब इंद्रियों के किये पापों का जो नाश करती है उसको नाशी कहते है। अत्रि ने पूछा इस जीव का स्थान कहां है? याज्ञवल्क्य ने कहा कि, दो भ्रकुटी और नासिका के बीच में जो भाग है सो जीव का स्थान है। यह सन्धि ही इस लोक और परलोक दोनों की सन्धि रूप कही जाती है। ब्रह्मज्ञानी सायं प्रातः इस सन्धि की उपासना करते हैं। अविमुक्त उपासना के योग्य है। इस प्रकार उपासना करने से जीव को अपना ज्ञान होता है। इस प्रकार जीव का ज्ञान जानना ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्य के शिष्यों ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि किसका जाप करने से अमृतत्व प्राप्त होता है? तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि शत रुद्र का जाप करनेसे अमृतत्व भाव प्राप्त होता है। तथा रुद्र के नाम अमृत रूप हैं उन नामों से मृत्यु को अतिक्रमण कर सकते हैं ॥ ३ ॥

विदेह देश के राजा जनक एक समय याज्ञवल्क्य के पास आकर कहने लगे कि, हे भगवन! संन्यासाश्रम सम्बन्धी मुझको उपदेश दीजिये। याज्ञवल्क्य ने कहा कि, ब्रह्मचर्यावस्था को प्राप्त करके गृहस्थाश्रम का पालन करना, गृहस्थाश्रम को पूर्ण करके वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करना और वानप्रस्थ को पूर्ण करके संन्यास दीक्षा लेना अथवा ब्रह्मचर्य से वा गृहस्थाश्रम से वा वानप्रस्थाश्रम से संन्यास लेना चाहिये। व्रत नियम से रहित होकर, स्नातक वेद कुशल जिस दिन से वैराग वृत्ति उत्पन्न हो उस दिन से ही संन्यास को ग्रहण करे। "प्रजापति सम्बन्धी सृष्टि करना अग्नि का रूप है, अग्नि प्राण को करता है" इस मंत्र से तीन गुणवाली इष्टि करना। तीन गुण इस प्रकार हैं सत्व, रज, और तम। "हे अग्नि! यह प्राण तेरा कारण रूप है क्योंकि प्राण से उत्पत्ति हुई है, तुम प्रकाश को प्राप्त हो, प्राण को जानने वाले हे अग्नि! तुम वृद्धि को प्राप्त हो, और हमारी सम्पत्ति विशेष करो" इस मन्त्र से अग्नि को सुंघना। "जो प्राण अग्नि का कारण रूप है उस प्राण में हे अग्नि देव! तुम प्रवेश करो" ऐसे कह कर आहुति देना। जो अग्नि होत्र न लिया हो तो उस गांव में जिसके यहां अग्नि हो उसके यहां से अग्नि लाकर ऊपर कहे प्रकार से पूज कर सुंघना। गांव में भी अग्नि न हो तो जल में आहुति देना। "जल सब देव रूप हैं, यह आहुति मैं सब देवों को देता हूं" ऐसे जल में आहुति देने के बाद उस अग्नि युक्त पवित्र हवि को जल में से निकाल कर भक्षण करना। पीछे तीनवार इस प्रकार मंत्रोच्चारण करना "यह स्थूल सर्व ब्रह्म रूप है इस सब की उपासना करना। हे भगवन् इस प्रकार है" ऐसे याज्ञवल्क्य ने कहा ॥ ४ ॥

इसके पश्चात् अत्रि मुनि याज्ञवल्क्य से कहने लगे कि हे याज्ञवल्क्य! यज्ञोपवीत से रहित ब्राह्मण किस प्रकार कहा जाय? याज्ञवल्क्य ने कहा कि, आत्मा के ध्येय करने वाले को भोजन और आचमन करना यज्ञोपवीत रूप है। जो संन्यासी है उसको इतनी ही नियम विधि है। श्रेष्ठ मार्ग में, आहार त्याग में, जल प्रवेश में, अथवा महा प्रस्थान में यही विधि है। फिर अत्रि मुनि ने प्रश्न किया कि संन्यासी वर्ण और वस्त्र से रहित, शिखा रहित, यज्ञ रहित शुचि होता है। द्रोह रहित शील वाला ब्रह्म को

प्राप्त होता है ! जो आतुर संन्यास लिया हो तो मन वाणी से सब का त्याग करना चाहिये। इस प्रकार ब्रह्म के योग्य न हो ऐसे मार्ग से गमन करता है तो भी वह ब्रह्म ज्ञानी कहा जाता है इसका क्या कारण है ? तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि, जो परम हंस संन्यासी है उनमें से आरुणि, असंवर्तक, श्वेतकेतु दुर्वासा, ऋतु, निदाघ, जड़ भरत दत्तात्रेय और रैवतक आदि परम हंस वर्णाश्रम के सब चिह्नों से रहित थे। उनके आचार विचार जानने में न आवें ऐसे थे। वे उन्मत भाव से रहित होकर भी उन्मत के समान दीखते थे। संन्यासियों को त्रिदण्ड, कमण्डलु, छींका, जल से शुद्ध ऐसा पात्र, शिखा और यज्ञोपवीत इन सबका "भुस्वाहा" कर जल में त्याग कर आत्मा को ढूंढना चाहिये ॥ ५ ॥

प्रारब्ध के योग से स्थूल रूप को धारण करते हुए भी वह सब प्रकार के बंधन से रहित होता है। वह प्रतिग्रह का त्याग करता है। वह ब्रह्ममार्ग में भली प्रकार आगे बढा हुवा होता है, शुद्ध मन वाला होता है। वह मुक्त है तो भी प्राण के टिकाने के लिये योग्य समय पर उदर रूपी पात्र में आहार डालता है। लोभालोभ में समान दृष्टि वाला होता है। एकान्त स्थान, देवमन्दिर, घासका समूह, सर्प का बिल, वृक्षों का मूल, कुम्हार का घर, अग्नि होत्र वाला मकान रेतिया नदी, पर्वत, गढ़ा, गुफा, छोटे छोटे झरनों वाले स्थान में रहने के लिये सब प्रकार के घरसे रहित होता है। "मेरा" यह अभिमान भी उसको नहीं होता है। शुद्ध ज्योति के ध्यान में तत्पर होता है। अध्यात्म ज्ञान में निष्ठा होती है और शुभाशुभ कर्म के छेदन करने में तत्पर रहता है। इस रीति का संन्यास करके जो अपने देह का त्याग करता है वह परम हंस संन्यासी है। वह ही परम हंस संन्यासी है।

महात्माओं के वाक्य

र्म से मनुष्य को मोक्ष मिलता है, और उस से धर्म की प्राप्ति भी होती है, फिर भला धर्म से बढ़ कर लाभदायक वस्तु और क्या है ?

धर्म से बढ़ कर दूसरी और कोई नेकी नहीं, और उसे भुला देने से बढ कर दूसरी और कोई बुराई भी नहीं है।

नेक काम करने में तुम लगातार लगे रहो, अपनी पूरी शक्ति और सब प्रकार से पूरे उत्साह के साथ उन्हें करते रहो।

अपना मन पवित्र रक्खो, धर्म का समस्त सार बस इसी एक उपदेश में समाया हुवा है। बाकी और सब बातें कुछ नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र हैं

ईर्षा, लालच, क्रोध और अप्रिय वचन इन सब से दूर रहो। धर्म प्राप्ति का यही मार्ग है।

यह मत सोचो कि मैं धीरे २ धर्म मार्ग का अवलम्बन करूंगा। बल्कि अभी बिना देर लगाए ही नेक काम शुरू कर दो क्योंकि धर्म ही वह वस्तु है जो मौत के दिन तुम्हारा साथ देने वाला अमर मित्र होगा।

मुझ से यह मत पूछो कि धर्म से क्या लाभ है ? बस एक बार पालकी उठाने वाले कहारों की ओर देख लो और फिर उस आदमी को देखो जो उस में सवार है।

अगर तुम एक भी दिन व्यर्थ नष्ट किए बिना समस्त जीवन पर्यन्त नेक काम करते हो तो तुम आगामी जन्मों का मार्ग बन्द किए देते हो।

केवल धर्म जनित सुख ही वास्तविक है। बाकी सब तो पीड़ा और लज्जा मात्र हैं।

जो कर्म धर्म-सङ्गत है बस वही कार्य रूप में परिणत करने योग्य है। दूसरी जितनी बातें धर्म विरुद्ध हैं उन से दूर रहना चाहिए।

मृतकों का श्राद्ध करना, देवताओं को बलि देना, आतिथ्य सत्कार करना, बंधु-बान्धवों को सहायता पहुंचाना और आत्मोन्नति करना यह गृहस्थ के पांच कर्म हैं।

जो पुरुष बुराई करने से डरता है और भोजन करने से पहिले दूसरों को दान देता है उस का वंश कभी निर्बीज नहीं होता।

जिस घर में स्नेह और प्रेम का निवास है जिस में धर्मका साम्राज्य है वह सम्पूर्णतया संतुष्ट रहता है अर्थात् उसके सब उद्देश्य सफल होते हैं।

देखो जो स्त्री दूसरे देवताओं की पूजा नहीं करती किन्तु बिछौने से उठते ही अपने पतिदेव को पूजती है, जल से भरे हुए बादल भी उसका कहना मानते हैं।

वही उत्तम सहधर्मिणी है जो अपने धर्म और यश की रक्षा करती है और प्रेम पूर्वक अपने पति की आराधना करती है।

चार दिवारी के अन्दर पर्दे के साथ रहने से क्या लाभ ? स्त्री के धर्म का सर्वोत्तम रक्षक उसका इंद्रिय निग्रह है।

जो स्त्रियां अपने पति की आराधना करती हैं, स्वर्गलोक के देवता उनकी स्तुति करते हैं।

पुत्र के प्रति पिता का कर्तव्य यही है कि वह उसे सभा में प्रथम पंक्ति में बैठने के योग्य बना दे।

यदि तुम को यश की लालसा है, यदि तुम्हें अपनी प्रशंसा सुननेमें आनन्द आता है, तो तू अपने को उस धूलि से ऊंचा कर जिस से तू बना है, और अपना कोई प्रशंसनीय उच्च उद्देश्य बना।

बरगद का विशाल वृक्ष जिसकी शाखायें इस समय गगन का चुम्बन कर रही हैं, एक समय पृथ्वी के पेट में राई के समान छोटा सा बीज था।

तू अपने व्यवसाय में, चाहे वह कोई हो शीर्ष स्थानीय होने का यत्न कर, उन्नति में किसी को अपने से आगे न बढने दे। तिस पर दूसरों के गुणों को देख कर जल मत, प्रत्युत अपनी बुद्धि को बढा।

पवित्र स्पार्धा से मनुष्य की आत्मा उच्च होती है, वह कीर्ति के लिए तड़फता है।

वह विघ्न बाधाओं के होते हुए भी ताड़ के पेड़ की तरह बढ़ता है, और नभोमण्डल में गरुड़की तरह बहुत ऊंचा उड़ता है और अपनी आखें सूर्य के तेज पर लगाए रहता है।

महापुरुषों के दृष्टांत रात को स्वप्न बन कर उस के सामने आते हैं और दिन भर उन का अनुकरण करने में ही उसे आनन्द प्राप्त होता है।

ईर्षालु का हृदय विष और द्वेष से पूर्ण है, उसकी जिह्वा विष उगलती है, अपने पड़ोसीकी सफ-

लता को देख कर उस का मन अशान्त हो जाता है

विद्वेष और घृणा उस के हृदय को खाते रहते हैं और उसे पल भर भी चैन नहीं मिलता।

जो लोग उस से बढ़ जाते हैं वह उनकी निन्दा करता है। जो भी काम वे करते हैं उन सब का बुरा अर्थ निकालता है।

दूरदर्शिता की बातों को दत्तचित्त होकर सुन, उसके उपदेशों पर ध्यान दे, और अपने हृदय में उन का संग्रह कर, उस के तत्त्व सर्वत्रिक हैं, और सारे सद्गुण उसी के आश्रित हैं। वह मानव जीवन की पथप्रदर्शिका और स्वामिनी है।

अपनी ज़बान को लगाम दे, अपने होठों को नियम में रख, जिस से कहीं तेरे मुंह से निकले हुए शब्द ही तेरी शान्ति को नष्ट न कर दें।

लंगड़े की हंसी मत कर, ऐसा न हो कभी तू भी लंगड़ा हो जाय, जो मनुष्य दूसरे की त्रुटियों की खुशी से चर्चा करता है उसे अपनी त्रुटियों को सुन कर दुःख होगा।

बहुत बोलने का फल अनुताप होता है इस लिए चुप रहने में भलाई है।

शेखी मत मार, क्योंकि इस से लोग तेरा तिरस्कार करने लगेंगे। दूसरे की हंसी मत उड़ा, क्योंकि यह भय से खाली नहीं है।

कटु परिहास मित्रता का घातक है। जो मनुष्य अपनी जबान को काबू में नहीं रख सकता वह कष्ट और संकट में फंस जाता है।

अपने वित्त से बाहर खर्च मत कर जिस से युवाकाल की मितव्ययिता वृद्धावस्था में तेरे सुख का कारण हो।

तृष्णा पाप कर्मों की जननी है, परन्तु मितव्ययिता हमारे सद्गुणों की रक्षक है।

तेरा मनोरञ्जन ऐसा न होना चाहिए जिसके लिए तुझे भारी व्यय करना पड़े।

जो मनुष्य जीवन की अनावश्यक चीजों में मग्न रहता है उसे एक दिन तत्सम्बन्धी आवश्यक चीजों के अभाव के कारण रोना पड़ता है।

दूसरों के अनुभव से बुद्धिमता सीख, उनकी त्रुटियों से अपने दोषों को ठीक कर।

परीक्षा करके देख लेने के पहिले किसी पर विश्वास मत कर, परन्तु अकारण किसी पर अविश्वास भी न कर; यह अनुदारता है।

जब कोई मनुष्य ईमानदार साबित हो जाय, तो फिर उसे अपने हृदय में खजाने की तरह सुरक्षित रख, उसे एक अमूल्य रत्न समझ।

जो काम दूर दृष्टि और सावधानी से हो सकता है उसे दैव पर मत छोड़।

खुरासान के एक बादशाह ने सबुकतगीं के पुत्र सुलतान महमूद को उसकी मृत्यु के सौ वर्ष बाद स्वप्न में देखा। उसका सारा शरीर गल कर मिट्टी हो गया था सिवाय आंखों के जो अब भी अपने कोयों में इधर उधर घूम रही थीं। शाही दरबार का कोई भी चतुर पुरुष स्वप्न का अर्थ न लगा सका, पर वहां एक साधु आ पहुंचा। उसने कहा कि आज भी महमूद की आंखें यह देख रही हैं कि मेरा राज्य दूसरों के अधिकार में है।

बहुत से नामवर लोग जमीन के नीचे गड़े हैं जिनके अस्तित्व का कोई चिह्न जमीन के ऊपर नहीं है।

जिस पुरानी लाश को मिट्टी के सुपुर्द किया था उसे मिट्टी ने ऐसा खा लिया है कि एक हड्डी भी बाकी नहीं रही।

अपने न्याय के कारण नौशेरवां (फारिस का एक प्रसिद्ध राजा) का शुभ नाम जीवित है यद्यपि उसे मरे बहुत वर्ष व्यतीत हो गए।

अरे भले आदमी! नेकी कर और अपनी उम्र को ग़नीमत समझ।

जब तक मनुष्य बात नहीं करता तब तक उस के गुण और दोष छिपे रहते हैं।

मैं वह नहीं हूं कि युद्ध के दिन पीठ दिखाऊं। मैं वह हूं जिस का सिर खाक और खून के बीच में तुम देखोगे।

यदि संसार से हुमां (एक प्रकार की शुभ चिड़िया) का अस्तित्व उठ जाय तो भी उल्लू की छाया के नीचे कोई न जायगा।

यदि कोई ईश्वर भक्त आधी रोटी खा रहा हो तो दूसरी आधी साधुओं को दे देगा।

यदि राजा सात देशों पर भी अधिकार करले तो फिर भी वह किसी अन्य देश की विजय का स्वप्न देखता है।

यदि किसी वृक्ष ने इसी समय जड़ पकड़ी है तो वह एक मनुष्य के बल से अपने स्थान से उखड़ आयेगा। अगर तुम उसे इसी तरह कुछ दिन छोड़ दोगे तो तुम उसको चर्खी के द्वारा भी जड़ से नहीं उखाड़ सकते।

जिसकी जड़ बुराई है वह नेकी की छाया नहीं पकड़ता, बुरे को शिक्षा देना वैसा ही है जैसे गुम्बज़ पर अखरोट रखना।

आग को बुझाना पर भूमल को रहने देना, सांप को मारना पर उसके बच्चे को पालना बुद्धिमानों का काम नहीं है।

नीच पुरुषों के साथ अपना समय मत नष्ट करो हजरत नूह का लड़का बुरों के साथ बैठा तो उसका पैगम्बरी का वंश जाता रहा।

क्या तुम नहीं जानते कि जाल ने रुस्तम से कहा था कि शत्रुको निर्बल, दीन, असहाय न समझना चाहिये?

जब स्वभाव बुरा होता है तब शिक्षक की शिक्षा कोई काम नहीं करती।

मिट्टी जोहे से कोई अच्छी तलवार कैसे बना सकता है। ऐ बुद्धिमान! नीच पुरुष शिक्षा से किसी काम का नहीं हो सकता।

मोह के स्वभाविक अनुग्रह में कोई अंतर नहीं है पर वह बाग़ में लाल उगाता है और खारी मिट्टी में कांटे।

बुरों के साथ नेकी करना ऐसा ही है जैसा कि नेकों के साथ बुराई करना।

आयुर्वेद शिक्षा।

(ले० पं० रामरक्षपाल वैद्य शास्त्री)

आन्हिक कर्म्म (दिन चर्या)

आज कल बहुत मनुष्य अपने नित्य कर्म से ऐसे च्युत होगये हैं कि जिसका कुछ कथन ही नहीं विशेष ध्यान देकर देखते हैं तो हम लोगों के लिये

ऋषि महर्षियों के कहे हुये आचार विचार सब स्वास्थ्य प्रद, आयु, सन्तान, और सम्पत्ति, देने वाले हैं, इसमें सन्देह नहीं कि शास्त्रों के न जानने से और आचार के छोड़ देने से आलस्य, दुःख, शोक की वृद्धि होती है, अल्पायु हो जाती है, शरीर रोगों का मन्दिर हो जाता है। अतः स्वास्थ्य लाभार्थ मनुष्यों को आचार का पालन अवश्य करना चाहिए। वशिष्ठ जी ने कहा है:-

आचारः परमोधर्म्मः सर्वेषा मिति निश्चयः।

कि आचार यह यह परम धर्म है, यह सब ऋषियों का मत है।

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालनम्।
आचारभ्रष्ट देहानां भवेद्धर्मपराङ्मुखः॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःख भोगी च सतत रोगी चाल्पायुषो भवेत्॥

पाराशर जीने कहा है कि चारों वर्णों को आचार पूर्वक रहना धर्म की रक्षा करना है, आचार से भ्रष्ट मनुष्य धर्म से विमुख होते हैं। आचार रहित दुराचारी पुरुष संसारमें निन्दित होता है। हमेशा दुःख भोगने वाला रोगी और शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है।

आचाराल्लभते ह्यायु राचारा दीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्य माचारो हन्त्यलक्षणम्॥

सदाचार के सेवन से बड़ी आयु, इच्छित सन्तान, और अक्षय धन, मिलता है। तथा सदाचार से ही अशुभ फल सूचक कुलक्षणों का नाश हो जाता है।

प्रातरुत्थान काल

वेदसे लेकर सब शास्त्रों में यही वचन मिलेंगे कि मनुष्य को ब्राह्म मुहूर्त (चार घड़ी के तड़के) में उठना चाहिये।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
तत्र सर्वाघशान्त्यर्थम् स्मरेच्च मधुसूदनम्॥
ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सावलक्षयकारिणी।

मनुष्य को चाहिये कि चार घड़ी रात्रि रहने पर जागे स्वस्थ चित्त हो आयु की रक्षार्थ तथा सब पापों के नाश के लिये विष्णु भगवान का स्मरण करे। ब्राह्म मुहूर्त की निद्रा बल का नाश करने वाली होती है। अतः तन्दुरुस्ती चाहने वाले मनुष्य चार घड़ी के सवेरे उठने का अभ्यास अवश्य करें।

प्रिय पाठक गण! प्रातः काल की स्वच्छ वायु में कोई एक ऐसी अद्भुत शक्ति है कि जिसके सेवन करने से रक्त शुद्ध, शरीर तेजस्वी, और आरोग्य होता है। अतः यदि दीर्घायु होना चाहो तो सुबह चार घड़ी रात्रि शेष रहने पर अपना बिछौना छोड़ो और ईश्वर का ध्यान करो फिर घर की रुकी हुई हवा को छोड़ कर शुद्ध हवा सेवन के लिये बाहर चले जावो। कुछ देर तक साफ और शुद्ध हवा का सेवन करो, प्रातः काल की शुद्ध वायु का सेवन करना दीर्घायु होने का प्रधान साधन है। यदि आप दीर्घजीवी होना चाहते हैं तो प्रातः काल चार घड़ी के सवेरे उठने का प्रण करलो और नियम के साथ प्रति दिन उठो। हां अगर सवेरे उठना होतो रात्रि को नौ या दस बजे सो जाना चाहिये क्योंकि बहुत रात्रि बीतने पर जो सोते हैं वे

सवेरे नहीं उठ सकते, अगर उठभी खड़े हों तो विशेष लाभ नहीं, क्योंकि स्वास्थ्य के लिये रात्रि में ६ घंटे अवश्य सोना चाहिये नहीं तो कम सोने से शरीर दुर्बल और रोगी हो जाता है शिर भारी रहना, आंखों में जलन होना काम करने में उत्साह न होनाआदि विकार पैदा होजाते हैं; पूर्ण निद्रा लिये बिना स्वास्थ्य खराब होजाता है। इसलिये अगर सवेरे उठना चाहो तो रात्रिके दस बजेके लगभग सो जाना चाहिये और सुबह उठने का अभ्यास डाल लेना चाहिए। उठकर श्री जगदीश्वर का स्मरण करे।

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणम्-
यद्वंदनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं-
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः॥

जिस परमेश्वर का कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वंदन, श्रवण, और पूजन करने से तत्काल मनुष्यों के पापों का नाश होजाता है और जिसकी कीर्ति परममङ्गल कारिणी है उस परमात्मा को मेरे अनेकों प्रणाम हैं।

प्रातः स्मरामि भवभीति महार्तिशान्त्यै-
नारायणं गरुड़ वाहन मब्जनाभम्।
ग्राहाभिभूतवरवारण मुक्ति हेतुं-
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम्॥
ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी-
भानुः शशी भूमि सुतो बुधश्च
गुरुश्च शुक्रः शनिराहु केतवः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

त्रैलोक्य चैतन्य महादिदेव -
श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थ-
संसार यात्रा मनुवर्तयिष्ये॥

इत्यादि श्लोक पढ़ता हुआ भगवान का ध्यान करके गणेशजी का ध्यान करे।

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथ बन्धुं-
सिन्दूर पूर्ण परिशोभित गण्डयुग्मम्।
उद्दण्ड विघ्न परिखण्डन चण्डदण्ड-
माखण्डलादि सुरनायक वृन्द वन्द्यम्।

इत्यादि प्रातः स्मरणीय प्रार्थना करके फिर शय्या का त्याग करते समय दाहिने हाथ से पृथिवी का स्पर्श करके वह हाथ मस्तक से लगाकर पृथ्वी से प्रार्थना करे।

समुद्र वसने देवी पर्वतस्तन मण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

हे देवि! रत्नों से परिपूर्ण समुद्र ही तेरे वस्त्र हैं और जिनमें से अमृत के समान पवित्र जल वाली, गङ्गा आदि नदियां प्रवाहित होरही हैं वह हिमवान् आदि पर्वत ही तेरे स्तन (पयोधर) रूप हैं।

हे विष्णु पत्नि! संसार का भरण पोषण करने वाली, मातृ भूमि मेरे पैरों के स्पर्श को क्षमा कर। इस प्रकार प्रार्थना करके विनय पूर्वक पहिले दाहिने पैर को भूमि पर रक्खे। फिर प्रथम दाहिने हाथ को देखना चाहिये उक्तञ्च।

करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते कर दर्शनम्॥

हाथ के अग्र भाग में लक्ष्मी, मध्य भाग में सरस्वती, और मूल भाग में ब्रह्मा का निवास होता

है, इसलिये प्रातः काल हाथ का दर्शन करना शुभ होता है। इस प्रकार उठकर प्रथम शौचादि से निवृत्त होवे। उक्तञ्च

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ।

प्रातः काल मल मूत्र का त्याग करने से आयु बढ़ती है इसके विपरीत करने से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

न वेगान्धारयेद्धीमाञ्जात मूत्रपुरीषयोः ।

बुद्धिमान मनुष्य मल मूत्रादि के वेगों को कभी न रोके, वेगों के रोकने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं॥

शिर तथा शरीर को वस्त्र से ढांप यज्ञोपवीत को कान पर लपेट एकान्त स्थान में शौच के लिये जावे। जलाशय, देवस्थान, मार्ग, ग्राम, फल वाले और सुन्दर छाया वाले वृक्षों के समीप, जोते हुये खेतमें, जहां औषधियां उपजती हों उसभूमि में, पर्वत की शिखर पर, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, गौ, विद्वान, द्विज, तथा देव स्थान को देखते हुए मल मूत्रादि का त्याग न करे। मल त्याग करनेके पश्चात् मल मूत्रके द्वारों को जल से स्वच्छ करके पात्र, हाथ, पैर, को अच्छी प्रकार कई बार धोकर शुद्ध करे।

मृत्तोयेन शुद्धि स्यान्न क्लेशो न धनव्ययः।
यस्य शौचेऽपि शैथिल्यं चित्तं तस्य परीक्षितम्

मृत्तिका और जल से शरीर की शुद्धिहोती है इसमें न तो अधिक परिश्रम और न धन का खर्च होता है। ऐसी शुद्धि करने में भी जिसको आलस्य है उसके चित्तकी परीक्षा हो गई। अतः शुद्धि करने में आलस्य न करे। फिर गण्डूष (कुल्ले) दन्तधावन (दांतुन) वैद्यक में कथित मौलसिरी, खैर, निम्ब, कीकर, आक आदि की दन्तधावन तथा मंजन कर दांत, जिह्वा मुख की शुद्धि करे।

क्रमशः

भक्ति ।

[ले० श्री० ब्रजकुमारी भगवद्भक्ति आश्रम]

परमपिता परमात्मा को नमस्कार करके कोटिशः धन्यवाद देकर उसकी महती अनुकम्पा से कुछ भक्ति पर विचार करती हूं। भक्ति करना मुक्तिका मुख्य साधन माना गया है। अतः सबको भक्ति करनी चाहिये। भक्ति ही भव बन्धनों से छुड़ाने वाली है। यदि ज्ञान के विषय में कुछ कहाजावे तो प्रथम यही उत्तर है, कि ज्ञान प्राप्ति कठिन है, दूसरे जिन सद्गुरु द्वारा ज्ञान लिया जावे उनकी प्राप्तिभी दुस्तर है। ज्ञान द्वारा शम, दम, तपादि से मनका निग्रह करना सर्व साधारण प्राणी मात्र के लिये असाधारण कार्य है। "कलौतु केवला भक्तिः" कलियुग में तो केवल भक्ति ही मुख्य है। कहा भी है:-

श्रेयस्स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो,
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एवशिष्यते,
नान्यद्यथा स्थूल तुषावघातिनाम् ॥

हे विभो ! जो आपकी कल्याण कारिणी भक्ति को छोड़कर ज्ञान प्राप्ति के लिये अंधत्व क्लेश उठाते फिरते हैं, उनको चावलों के तुष के कूटने पर जिस प्रकार क्लेश के सिवा कुछ नहीं मिलता उसी प्रकार उनको भी दुःख के सिवाय कुछ नहीं मिलता।

भक्ति ही भगवत्प्राप्ति का सरल उपाय है। श्री कृष्ण भगवान ने कहा है:-

नित्यं वदामि मनुजाः स्वयमूर्ध्वबाहु,
यो मां मुकुंद नरसिंह जनार्दनेति।
जीवो जपत्यनुदिनं मरणे रणे वा,
पाषाणकाष्ठसदृशाय ददाम्यभीष्टम् ॥

हे मनुष्यो ! मैं भुजा उठाकर सर्वदा कहता हूँ कि जो मरण में वा रण में मुकुंद नरसिंह जनार्दन ऐसे प्रतिदिन मुझे जपता है वह चाहे पाषाण और काष्ट के सदृश भी क्यों न हो तोभी उसको मनोवांछित अर्थात् मुक्ति देता हूं।

इस कल्याण प्रदायिनी भक्ति का स्वरूप क्या है ? इसमें अनेक मत होतेहुये भी महर्षि नारद जी की उक्ति सर्वथा सत्य व श्रेष्ठ है। महर्षि नारद जी कहते हैं।

"अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपं मूकास्वादनवत्"

प्रेम भी गूंगे के स्वाद की भान्ति अकथनीय है,

"प्रेम एव पराकाष्ठा सा भक्ति"

प्रेम की पराकाष्ठा चरम सीमा को ही भक्ति कहा जाता है। अर्थात ईश्वर में अनन्य प्रेम होना भक्ति है वह भक्ति कैसी है ?

" अमृत स्वरूपा शान्त स्वरूपा च "

वह कल्याण कारिणी अनन्य भक्ति व्रज की ललनाओं में थी भगवान ने स्वयं अपने मुखारविंद से कहा है कि मुझे शिव, ब्रह्मा तथा अन्य इंद्रादि देवता ऐसे प्रिय नहीं हैं जैसी की व्रज की गोपी प्यारी हैं। उन प्रेममयी गोपियोंकी कैसी प्रेमाकृत उक्ति है। कि,

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु,
यन्निर्विशत्युतकरावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलस्तवपादमूले,
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥

हमारा चित्त जो इस समय तक सुख से घर के कामों में लगरहा था वह अब तुमने हर लिया है यही दशा हाथों की हुई है, और अब यह पैर भी तुम्हारे चरण तल को छोड़ कर एक पद भी चलने को असमर्थ हैं। अतः अब हम व्रज को कैसे जांय और वहां जाकर क्या करें ?

देखिए कैसी अनन्य भक्ति दर्शाई है। मानव जीवन में भक्ति का प्रादुर्भाव होना भगवत्प्राप्ति का लक्षण है। भक्ति से ही मनुष्य अलौकिक सुख व शांति का अनुभव कर सकता है और भगवत्प्रेम की तल्लीनता के परमानंद को प्राप्त कर सकता है। भगवत् की प्राप्ति प्रबल इच्छा होने पर ही होती है। एक शिष्य गुरुके पास गया और विनय करके कहने लगाकि भगवन ! मुझे धर्म का उपदेश करो जिस से भगवत् प्राप्तिहो। गुरु ने शिष्य की तरफ मुसकरा कर देखा और कहा कुछ भी नहीं। शिष्य प्रति दिन आता और नित्य भगवत्प्राप्त्यर्थ विनय करता। एक दिन जब कि बहुत धूप पड़ रही थी उस समय गुरुने कहा " शिष्य " नदी पर हमारे साथ चल

और वहां जाकर डुबकी लगा तब शिष्य ने वहां जाकर नदी में डुबकी लगाई तत्काल गुरु नेभी डुबकी लगा शिष्यको पानीमें बलात् दबाये रक्खा। जब शिष्य बल लगा कर छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा तब गुरुने छोड़ दिया। जल के ऊपर आने पर गुरु ने कहा कि शिष्य जब तू जल के नीचे था तब तुझे किस वस्तु की अधिक व प्रबल इच्छा थी। शिष्य ने कहा " खुले पवन में श्वास की। तब गुरुने कहा क्या तुम ईश्वर की भी इतनी अधिक लालसा रखते हो ? यदि इतनी ही लालसा है तो एक क्षण में ईश्वर मिल जायगें। इसी प्रकार भक्त के हृदय में जब तक प्रबल आकांक्षा नहीं होती तब तक भगवत्प्राप्ति नहीं होती है। जिस प्रकार कि उस शिष्य ने जल में डुबकी लगाई इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी मात्र संसार सागर में डूब रहा है और सांसारिक राग द्वेषादि के बंधनोंसे वेष्ठित है। जब भगवान् की दया और अपने पूर्व पुण्यों के उदय होने पर वह बन्धनों से व्याकुल हो श्वांस रूपी ईश्वर की प्राप्ति की प्रबल इच्छा करता है तब बल पूर्वक उन बंधनों को तोड़ कर परमानंद को प्राप्त होता है।

भगवान् ने गीता में कहा है:-

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोधि गच्छति॥

मनुष्य जब गुणों के बिना अन्य किसी को करता भोक्ता नहीं देखता और अपने को तीनों गुणों से परे अर्थात् साक्षी मात्र जानता है तब वह मेरे परमात्म भाव को प्राप्त होता है।

संसार में मनुष्य को जितनी धन प्राप्ति में तथा पुत्र कलत्रादि में प्रबल लालसा होती है यदि उतनी भगवत्प्राप्त्यर्थ की जाय तो तुरन्त भगवत्प्राप्ति हो जाय। वह भक्ति नौ प्रकार की कही गई है। यहां पर उस को सूक्ष्मता से वर्णन करती हूं।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनं।
अर्चन वंदनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥

ये नौ प्रकार की भक्ति उत्तरोत्तर वर्धमान तथा चढ़ने की सीढ़ी हैं। जिस प्रकार मनुष्य एक सीढ़ी से दूसरी पर पहुंच कर शृंग पर पहुंच जाता है उसी प्रकार भगवद्धाम को पहुंचाने की यह नवधा भक्ति सीढ़ी है सब कार्य अथवा उस का ज्ञान वह सब सुनकर ही होता है। प्रथम श्रवण भक्ति है। जब हम किसी वस्तु की प्रशंसा वा गुणादि सुनते हैं तभी उस वस्तु के प्रति प्राप्ति की लालसा होती है। इसी प्रकार भगवान् की महिमा तथा गुण वेद शास्त्र वा कथा द्वारा श्रवण करते हैं उस के श्रवण से हमारे हृदय में प्रेम का आविर्भाव तथा श्रद्धा उत्पन्न होती है।

दूसरी कीर्तन भक्ति है। जब हम कोई कार्य करते हैं या सुनते हैं तो मुख द्वारा उच्चारण करते हैं। इससे वह बार २ कहने से हृदय पटल पर अंकित होजाना अवश्यम्भवी है। अतः हम कथादि सुनकर उस जगन्नियंता की चर्चा तथा गुण गान कीर्तन करते हैं इससे हमारे हृदय में भक्ति का विकाश होता है।

तीसरी स्मरण भक्ति है। जब हम कीर्तन करेंगे तो उसका बारम्बार स्मरण होवेगा और उसके स्मरण करने से मनुष्य सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त होता हुआ भी सद्भावी बनेगा। भगवान् की स्मरण भक्ति ऐसी होनी चाहिये जैसी कि पानी भरने वाली

घड़े में, गौकी बछड़े में और नटनी का अपने शरीर में ध्यान रहता है इसी प्रकार भगवान का स्मरण करना स्मरण भक्ति है।

चौथी पाद सेवन भक्ति है। भगवान के चरण कमलों का हृदय में ध्यान तथा उन में अतिशय गाढ़ भक्ति करना पाद सेवन भक्ति है।

पांचवीं अर्चन भक्ति है। हृदय से प्रेमयुक्त जो अर्चना कीजाती है वही परम अर्चना है। जैसा शबरी ने अपने उच्छिष्ट बेरों से जिस प्रकार अर्चना की थी और विदुरानी ने जिस प्रकार प्रेममें निमग्न हो कर केले के छिलकों से अर्चना की थी इसी प्रकार प्रत्येक कार्य करता हुआ भगवत अर्चना समझे।

छठी वंदना भक्ति है। जब श्रद्धा भक्तिसे पूजा की जाती है तो हृदयानुराग से वंदना करने की स्वाभाविक इच्छा होती है। उसमें प्रेम विनय की नम्रता तथा श्रद्धा होनी चाहिए।

सातवीं दास्य भाव की भक्ति है। हृदय में भगवान के प्रति अपना दास भाव रखना और भगवान को स्वामी भावसे भजना दास भाव की भक्ति है। दास भाव की भक्ति पर हनुमान की रामचंद्र जी के प्रति श्रद्धा भक्ति और अपनी लघुता का परिचय रामायण से मिलता है।

आठवीं सख्य भक्ति है। भगवान के प्रति सखा भाव रखना तथा उसको ही सबसे प्रिय सुहृद मानना सख्य भावकी भक्ति है। जैसी धनुर्धारी अर्जुनने की थी।

नवीं आत्मनिवेदन भक्ति है। यह अन्तिम नवीं भक्ति है। अतः भगवान को ही अपना सर्वस्व समझ और सर्व समर्पण कर उसी का ध्यान करे और निरन्तर उसीके प्रेममें रत रहे। यह भक्ति मनुष्य को कल्याण प्रद परमधाम को पहुंचाने वाली है।

इस नवधा भक्ति में जाति पांति का भेद नहीं है। भगवान ने कहा है:-

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये पि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥

जो पाप योनियां है वह भी मेरा आश्रय करें तो वह भी परम पद मोक्ष को पावें इसी प्रकार स्त्री वैश्य, शूद्र कोई भी हो मेरा आश्रय कर परम पदको प्राप्त होता है।

भक्तों के चरित्र।

रूप सनातन ॥

रूप और सनातन यह दोनों सगे भाई थे और बंगाल के रहने वाले थे। वृन्दावन में जो आज मंदिरों की भरमार दिखाई देती है वहां जंगल पड़ा था और मंदिर कहीं देखने को न था। यह सब रूप सनातन की भक्ति के कारण हुआ। इनके प्रचार के कारण ही वृन्दावन का अधिक महत्व हुआ।

यह उच्च कुल में उत्पन्न हुए थे और अन्हीं

शिक्षा पाप करके बादशाह के हां मनसबदारी प्राप्त की थी। बहुत बुद्धिमान, परिश्रमी व ईमानदार थे। इस लिए खजाने का काम इनके सुपुर्द किया गया था! फारसी के विद्वान होने और मुसलमानों के संग में रहने के कारण मूर्तिपूजा से घृणा हो गई थी। एक दिन का जिकर है कि किसी भक्त का मालगुजारी का रुपया बहुत देना था और वह गरीबी के कारण दे नहीं सकता था। वह उस समय बंगाल के मनसबदार थे। वह जमींदार राज दण्ड के भय से चैतन्य महाप्रभु की शरण में आया और बहुत दुःखी होकर सर्कारी कर्मचारियों के अत्याचार की कहानी सुनाने लगा और आर्त होकर रोने लगा। महाप्रभु बोले "तू सब चिंता छोड़ कर भगवान का कीर्तन कर, भगवान तेरा दुःख दूर करेंगे" रूप सनातन को पता लगा कि वह चैतन्य महाप्रभु के पास जाकर छुप गया है, वह उसे पकड़ने के लिए आए। महाप्रभु ने सुना और उत्तर दिया कि चिंता छोड़ कर कीर्तन में लग जाओ। ऐसा ही हुआ और खुले मैदान में सब ने मिल कर कीर्तन करना आरम्भ किया। रूप सनातन पहुंचे और थोड़ी देर कीर्तन करने लगे। राज पदवी का ख्याल दिल से दूर होगया और जनता के सामने सब के साथ मिल कर गाने और नाचने लगे और आपे से बाहर हो गए। दिल में सचाई थी केवल चिताने वाले की कमी थी। चिनगारी लगाने से एक दम प्रकाश हो गया सोती हुई आत्मा जाग उठी। अपने आप की पहचान होगई फिर कौन किस की गुलामी करे? त्याग के भाव जागत होगए राज्य धानी भी तुच्छ दिखाई देने लगी। अन्तःकरण में मालिक का प्रेम व लग्न लग गई निश्चय कर लिया कि अब लौट कर नहीं जावेंगे और गुरु के चरणों में दिन बितावेंगे।

कीर्तन समाप्त होने पर महाप्रभु ने मुसकरा कर पूछा "क्या तुम इस भक्त को पकड़ने आए हो? उन्होंने हाथ बान्ध कर प्रार्थना की "भगवन आए तो इसी लिए थे परन्तु अब हम आप ही पकड़े गए। अब तक बादशाह के मनसबदार थे अब आपके सेवक हैं। हमको भी शरण में लीजिए और भक्ति का दान दीजिए। समस्त जीवन कागज लिखने और रुपए गिनने में व्यतीत होगया। अब तो दया कीजिए और भवसागर से उतारिए। महाप्रभु हंसे और बोले ठीक कहते हो।

जगत मोह फांसी अजर कटे न आन उपाय।
जो नित सत्संग करे, सहज मुक्त होजाय।
कामधेनु और कल्पतरु, जो सेवत फल होय।
सत्सङ्गति छिन एकमें प्राणी पावे सोय॥
सत्सङ्गति निज कल्पतरु सकल कामनादेन।
अमृतरूपी वचन कहि तिहुंताप हर लेत॥

सत्य का सगं होने से सत्य प्रकट होजाता है प्रकृति रूपी मैल हटजाता है। आत्म ज्ञानियों के आत्म प्रकाश के सामने माया के बादल छिन्न भिन्न होजाते हैं। जरूरत केवल छल कपट रहित होने की है फिर तो देरी लगती ही नहीं।

रूप और सनातन हाथ जोड़ कर बोले "हम सेवकों के लिए क्या आज्ञा है?" चैतन्यजी ने कहा "जिस धन, सम्पति ने तुमको जाल में फंसा रक्खा है, उसे भगवान की राह में खर्च करदो, जब जाल कटजावेगा तब रास्ता बताया जावेगा,, यह नमस्कार करके उठे। घर आकर धनद्रव्य कंगालों को बांट दिया और उस भक्त की मालगुजारी भी अपने पास से

अदालत और नौकरी छोड़दी । यह बात सारे शहर में फैल गई ।

घर बार को छोड़ कर यह महाप्रभु की सेवा में उपस्थित हुए । महाप्रभु ने बड़े प्रेमसे अङ्ग लगाया और आज्ञा दी कि तुम बृज में जाकर रहो । भगवान की जन्म भूमी में विचरो। वृन्दावन को जगाओ। भगवान के लीला स्थानों को खोज कर प्रकट करो। भक्ति रस की कथाएं और भजन बनाकर भक्ति का प्रचार करो । भगवान् प्रसन्न होकर दर्शन देंगे ।

गुरु के प्रेम पन्थ सिर दीजे ।
आगा पीछा कबहूं न कीजे ॥
गुरु के पन्थ होय सोई होई ।
मारत आन चलो मत कोई ॥
गुरु की आज्ञा दृढ़ कर गहिए ।
गुरु की आज्ञा ही में रहिए ।
गुरु आज्ञा बिन काज न कीजे ।
हानि होय तो होने दीजे ॥
गुरु की आज्ञा विघ्न न होई ।
गुरु की आज्ञा गुरुमुख कोई ॥

यह उत्तम अधिकारी थे दृढ़ विश्वास होगया और गुरु की आज्ञा को अपना पथ प्रदर्शक व रक्षक समझ कर निर्भय होकर वृन्दावन की तरफ चले । पटना से काशी आए । काशी जी में दर्शन कर प्रयाग जी गए वहां स्नान करके आगरा की राह बृजभूमि की तरफ बढ़े ।

राह में एक सुन्दर छैल छबीला और अलबेला अहीर का लड़का मिला उस से पूछा भाई बृजभूमि कितनी दूर है ? वह मुस्करा कर बोला, आंखके अंधे नाम नैनसुख क्या तू अंधा है जो बृजभूमि में आकर भी बृजभूमि को नहीं पहचानता, यही तो कुंवर कन्हाई के खेल कूद राग रङ्ग और विश्राम की जगह है । वह दोनों उसकी भोली भाली और सीधी सच्ची बातों को सुन कर ऐसे प्रसन्न हुए कि तन बदन की सुध भूल गए। हाय कृष्ण ! कह कर पृथ्वी पर गिर पड़े और अचेत हो गए । जब आंख खुली वह लड़का सामने न था । सामने जमनाजी के श्याम जल के दर्शन किए और फूलों से लदे हुए कुंज दिखाई दिए देख कर कृत्य कृत्य होगए । वहां का वायु मण्डल ही निराला था हृदय में भक्ति की तरंगें लहरें मारने लगीं चित को आनंद व शांति मिली । घूमते फिरते श्री वृन्दावन के निकट पहुंचे । वहां केवल दस बीस घर थे, यमुना के किनारे बहुत घने वृक्ष लगे थे । वह दिन वृन्दादेवी की पूजा का था । लोग श्री यमुना जी पर दूध दही और पुष्प चढ़ा रहे थे । यह एक वृक्ष के नीचे बैठ गए और रात को वहां ही सो रहे । रात को स्वप्न हुवा कि तुम जहां ठैरे हुए हो यहां वृन्दादेवी का स्थान था अब गुप्त हो गया है इसे प्रकट करना चाहिए । प्रातः काल उठते ही उन्होंने उसे खोदा, एक मूर्ति दुर्गा की निकली उसे वहां स्थापित किया । अब वहां उसकी पूजा होती है । यहां जो गौ पहले ब्याती है उस का दूध इस पर चढ़ाया जाता है ।

दूसरे दिन स्वप्न में श्री गोविन्ददेव का दर्शन हुआ जिस में उन के मन्दिर का पता दिया गया और वह भी खोद कर निकाल लिया गया और उसकी स्थापना की गई । इनके साथ इनका भतीजा जीव गोसाईं भी आया था उसे वहां का पुजारी नियत कर दिया और जयपुर के राजा मानसिंह ने १२ लाख

रुपया की लागत से लाल पत्थर का मन्दिर बनवाया जो किले के सदृश है। वृन्दावन में यही सब से पहला मन्दिर है। जिस समय यह मन्दिर बनवाया गया उस समय अकबर फतेहपुर सीकरी में अपने महल और आगरे में किला बनवा रहा था इस लिए पूजा में किसी को लाल पत्थर के इस्तेमाल की आज्ञा न थी परन्तु मानसिंह की अकबर के दरबार में बहुत रसाई थी इस लिए उस ने खास तौर पर आज्ञा ले कर बड़े भक्ति भाव से यह मन्दिर बनवाया।

महा प्रभु ने तीर्थ स्थानों के प्रकट करने के अतिरिक्त रूप जी को पुस्तक रचने की भी आज्ञा दी थी परन्तु उन्होंने इस विचार से इधर ध्यान नहीं दिया कि लिखने पढ़ने से भजन ध्यान में बाधा पड़ेगी। एक दिन रात को भगवान शिव ने स्वप्न में बतलाया कि "गुरु की आज्ञा का पालन न करना ठीक नहीं है" इस पर सचेत होकर उन्होंने ५ लाख श्लोकों में अनेक पुस्तकें लिखीं। जिनमें से रस सिद्धान्त, उज्वल नीलमणि और रसामृत बहुत प्रसिद्ध हैं। रूपजी न केवल संस्कृत के विद्वान् थे परन्तु बड़े कवि भी थे। एक दिन किसी कविता में लिख गए कि "राधाजी की चोटी काली नागिन के समान है परन्तु यह उपमा उन्हें अच्छी नहीं लगी। दूसरे दिन सनातन जी कहीं घूमने के लिए बाहर गए थे वहां एक लड़का लड़कियों के साथ झूला झूल रहा था और सब हंस रहे थे। उस भीड़ में एक लड़की बड़ी ही सुन्दर व रूपवती थी उसके जूड़े की चोटी खुलगई और नागिन के समान लहलहाने लगी। सनातन जी चिल्ला उठे 'इस नागिन को इस सुन्दरी के सिर से उतारो, यह कहते ही अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उसी समय ध्यान आया कि रूपजी की बालों के लिए काली नागिन की उपमा बहुत ठीक है फिर उसी श्लोक को ठीक माना

सनातन जी बड़े और रूपजी छोटे भाई थे परन्तु भक्ति भाव में रूप जी को बड़े आने से बड़ा मानते थे और उनका आदर सत्कार करते थे। सनातन जी नित्य ही वृज की परिक्रमा किया करते थे एक दिन रूपजी के पास आए। उनका जीवन बड़े सुख का था इस लिए ध्यान आया कि भिक्षा की रूखी सूखी रोटियों से कैसे काम चलेगा? इस विचार का मन में आना था कि अहीर की एक महा सुन्दर कन्या दूध दही व अन्य अच्छे २ भोजन देगई। भगवान का भोग लगा कर वह प्रसाद पाया तो उसमें इतना आनन्द आया कि जीवन पर्यन्त याद करते रहे। सनातन जी ने रूपजी से पूछा कि यह भोजन इतना स्वादिष्ट क्यों था? तब बोले चुप रहो यह और लड़की न थी स्वयं राधिकाजी थीं। मुझे अच्छे भोजन की इच्छा हुई थी इस लिए वह आप लाकर दे गईं। सनातन जी ने कहा 'अब ऐसी इच्छा मन में न उत्पन्न होनी चाहिए। जब घर बार छोड़ कर साधु होगए तो फिर स्वाद का क्या ध्यान रखना? उस समय से खाने पीने की तरफ ध्यान न रहा। जब चेतन महाप्रभु ने शरीर छोड़ा तो लोगों को बड़ा दुःख हुआ। सब की दृष्टि रूप सनातन की तरफ गई। यह प्रेमियों में सब से श्रेष्ठ समझे जाते थे। उनके पीछे लोगों ने इन ही को आचार्य बनाया। इन के कीर्तन में सब को वही आनंद व रस आने लगा।

एक दिन कीर्तन होरहा था रूपजी के सिवाय सब लोग प्रेम में मग्न हो गए। यह दशा देख कर गोस्वामी करणपुरी कहने लगे जब रूप जी बेसुध व अचेत नहीं हुए तो इस का कारण यह है कि

गहिरे घाव वाले हैं और साधारण लोग थोड़े ही में ऊब पड़ते हैं। रूप जी बोले शरीर ही को न देखो हृदय की ओर अभी दृष्टि रखो उस में आग लग रही है। जब शरीर से कपड़ा हटा कर दिखाया तो शरीर में फोले दिखाई देने लगे।

सनातन जी में वैराग का अंग बहुत ही पूबल था। वह लंगोटी और कमण्डलु के अतिरिक्त अपने पास कुछ भी नहीं रखते थे। एक दिन किसी भाट के घर पहुंचे। वहां मदन मोहन जी की मूर्ति रक्खी हुई थी जो अत्यंत सुंदर और मनोहर थी। यह नित्य ही उस के घर दर्शन करने जाने लगे और दर्शन करके रो दिया करते। भाट पहले धनाढ्य था और अब कंगाल होगया था उसने सोचा इस मूर्ति ने मुझे दरिद्री बना दिया है, सम्भव है यह भी मेरी तरह निर्धन हो गया हो वह सनातन जी से उसकी निंदा करने लगा कि इस ठाकुर ने मुझे दरिद्र बना दिया है। सनातन जी बोले तुम ठीक कहते हो देखो मेरा घर बार छुड़ा कर मुझे फकीर बना दिया है अब मैं रात दिन इस को रोता फिरता हूं। उस ने पूछा फिर क्या करूं? यह बोले मुझे दे दे मैं इससे निबट लूंगा। उस ने प्रसन्न होकर मूर्ति इनको दे दी। यह उठा लाये और उसकी पूजा करने लगे। एक दिन भोग में नमक नहीं था स्वप्न हुवा नमक अवश्य लाया करो। क्या करते नमक भी मांग कर लाने लगे। दूसरे दिन फिर स्वप्न हुआ घी भी मांगा करो। उस दिन सनातन जी रुष्ट होगये और कहने लगे आप मुझे चटोरा बनाना चाहते हैं, मैं अब पूजा नहीं करूंगा आप कोई और सेवक तलाश कर लीजिये। यह कह कर बाहर आ बैठे और खाना पीना छोड़ दिया। मालिक की मौज, उसी दिन इनके पास एक सौदागर आया और कहने लगा कि महाराज मेरी नाव नदी के भंवर में पड़ गई है सेवक पर दया होजावे तो जो आज्ञा हो वही सेवा करूं। सनातन जी उसे ठाकुर जी की सेवा में लेगए और बोले इन से हाथ जोड़ कर अरज़ कर ले। उस ने प्रार्थना की और स्वीकार हो गई। नदी पर आकर देखा तो नाव किनारे आ लगी थी। उस साहूकार ने मंदिर बनवाया और सेवा पूजा व भोग के लिए प्रचुर धन नियत कर दिया। यह दूसरा मंदिर था जो वृन्दावन में बना। सनातन जी ने इस का प्रबंध कृष्णदास को सौंपा और आप वहां से दूसरे स्थान में चलदिए और कृष्णदास को कह गए कि ठाकुरजी को भोग उत्तम लगना चाहिए।

वहां से चल कर आप किसी निर्जन स्थान में जा बैठे और सोचने लगे "जब भगवान स्वयं भोजन देते हैं तो मैं द्वार २ क्यों मारा २ फिरूं यह सोच कर वहां तीन दिन तक बिना अन्न जल के पड़े रहे। चौथे दिन एक परम सुकुमार बालक उत्तम २ पदार्थ खाने के लिए लाया और उन्हें देकर कहने लगा यहां 'बैठा क्या करता है? हाथ पांव मिले हैं उनसे काम क्यों नहीं लेता, आलसी बनना ठीक नहीं है।" यह मुसकरा कर चुप होरहे, तीन दिन तक वह बालक लाता रहा चौथे दिन इन्हें ध्यान आया लड़का ठीक कहता है बिना परिश्रम के भोजन से भजन ठीक नहीं होता। लड़के ने जिस गांव में रहने का पता दिया था यह वहां पहुंचे। लोगों ने कहा ऐसे रूप रङ्ग का कोई लड़का यहां नहीं है! यह सुन कर उन्हें महा दुःख हुआ। जब रात को सोए

लड़का स्वप्न में प्रकट होकर कहनेलगा "मैं बाल रूप कृष्ण था, मैंने तुम्हारी थोड़ी सी सेवा की, तुमको दुःख क्यों हुआ ? तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिये था। बाहर भीतर हर जगह मैं ही तो हूं। तुमने दोनों जगह मेरा दर्शन कर लिया। अब संसार में आनन्दसे रहो। तुम्हारे सारे पाप कटगए"। सना तन जी प्रेम में मग्न होगए। रूप सनातन जी ने भक्ति का बहुत प्रचार किया। वृंदावन के तीर्थ के बनाने वाले यही समझे जाते हैं। भगवान् फिर ऐसे भक्तों को हमारे बीच भेजे।

मानवधर्म सार।

दशमोऽध्यायः ॥

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः।
प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्त्वेषां नेतरांविति निश्चयः ॥

अपने कर्मों में स्थित द्विजजाति तीनों वर्ण (वेद को) पढ़ें, ब्राह्मण उनको पढ़ायें न कि दूसरा दोनों (क्षत्रिय और वैश्य) पढ़ें यह निश्चय है॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णाद्विजातयः।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण द्विज जाति (द्विज जन्मा) हैं चौथा एक जाति (एक जन्मा) है शूद्र पांचवां कोई वर्ण नहीं है॥ २॥

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्निष्वक्षतयोनिषु।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥

सारे वर्णों में अपने तुल्य वर्ण की अक्षतयोनि पत्नियों में सारे अनुलोमता से जो उत्पन्न हुवे हों वह जाति वही जाननी चाहिये॥३

त्रिषूपयम्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः।
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन् पत्नीतेऽपसदाः स्मृताः॥

ब्राह्मण का तीनों वर्णों की स्त्रियों में से क्षत्रिय का दोनों में से और वैश्य का एक में से यह छः अपसद कहे हैं॥ ४॥

तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगेयुगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥ ५॥

यह सब तप के प्रताप से (विश्वामित्र की तरह) और बीज के प्रताप से (ऋष्यशृंग की तरह) समय २ पर मनुष्यों में से यहां ऊंची नीची जाती को प्राप्त होते हैं॥ ५॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गतालोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥६॥

(जैसा कि) यह क्षत्रिय जातियें (उपनयन-आदि) क्रिया के लोपसे और ब्राह्मणों के न मिलने से लोकमें धीरे २ शूद्रता को प्राप्त हुई हैं॥ ६॥

चांडालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः।
अपपात्राश्च कर्त्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥७॥

चांडाल और श्वपचों का ग्राम से बाहर निवास हो और यह पात्र से अलग कर देने चाहियें, धन इनका कुत्ते और गधे हैं॥ ७॥

वासांसि मृतचेलानि भिन्नभांडेषु भोजनम्।
काष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥८

वस्त्र मुर्दों के कपड़े हों, भोजन टूटे बर्तनों (ठीकरों में हो, भूषण लोहे के हों, और नित्य २

घूमते फिरें ॥ ८ ॥

अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ।
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ९ ॥

अन्न इनको टूटे बर्तन में दूसरे के आधीन करके (दास द्वारा) देना चाहिये रात को वह गाओं में वा नगरों में न विचरें ॥ ९ ॥

दत्त्वा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ।
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ।१०।

दिन को कार्य के लिये राजा की आज्ञा से (अपना) चिन्ह लगाए हुए फिरें, और अनाथ मुर्दे को ग्राम से बाहर लेजाएं यह मर्यादा है ।१०॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ।
स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥

ब्राह्मण के लिये, गौ के लिये स्त्री वा बालक की सहायता के लिये, शुद्ध भावना से देह का त्याग पूर्ति लोगों को सिद्धि स्वर्ग देने वाला है ॥ ११ ॥

श्राद्धकर्मातिथेयं च दानमस्तेयमार्जवम् ।
स्वदारेषु तथा चैषां न सूयता ॥ १२ ॥

श्राद्ध कर्म, अतिथि सत्कार, दान, अस्तेय, आर्जव, अपनी स्त्री में ही सन्तानोत्पत्ति और असूया तथा ॥ १२ ॥

अहिंसा सत्य मास्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ।१३

किसी को न सताना, सत्य बोलना, किसी का हक न दबाना वा छीनना (मट्टी जलादि से) शुद्धि, इंद्रियों का संयम यह संक्षेप से चारों वर्णों में मनुने धर्म कहा है ॥ १३ ॥

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥

शूद्रा में से ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ यदि श्रेष्ठ से सन्तान उत्पन्न करे तो अश्रेष्ठ भी सातवें जन्म में श्रेष्ठ जाति को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ।१५।

शूद्र ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय से उत्पन्न हुए को और वैश्य से उत्पन्न हुए को जानें॥

बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः ।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः ।१६

कई बुद्धिमान बीज की स्तुति करते हैं दूसरे क्षेत्र की, तीसरे बीज और क्षेत्र दोनों की, किंतु इस में यह व्यवस्था है ॥ १६ ॥

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन् ।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ॥

जिससे बीज के प्रताप से तिर्यग्योनि में उत्पन्न हुए ऋषि पूजनीय और प्रशंसनीय हुए हैं, इसमें बीज की प्रशंसा है ॥ १७ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः ।१८।

पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना यह छै कर्म ब्राह्मण के हैं ॥ १८ ॥

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥१९

छः कर्मों में से तीन कर्म इसके जीविका के हैं. यज्ञ करना पढाना, और शुद्धि से दान लेना ॥ १९

त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥२०॥

तीन धर्म ब्राह्मण से क्षत्रिय के लिये हट जाते हैं पढ़ाना यज्ञ कराना और तीसरा दान लेना ॥२०॥

वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः ।
न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ।२१

वैसे ही यह वैश्य के लिये भी हट जाते हैं। यह मर्यादा है, प्रजा का स्वामी मनु उन दोनों (क्षत्रिय वैश्य) के लिये यह धर्म नहीं बतलाता है॥

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषीर्विशः ।
आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ।

(किंतु प्रजा की रक्षा के लिये) शस्त्र अस्त्र का धारना यह क्षत्रिय का, और वाणिज्य, पशु पालन, और खेती यह वैश्य का जीविका के लिए है, और धर्मार्थ दान, पढ़ना और यज्ञ हैं ॥ २२ ॥

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ।२३

(जीविका के लिये भी) वेदाभ्यास ब्राह्मण का, प्रजा की रक्षा क्षत्रिय का, व्यापार वैश्य का यह अपने कर्मों में विशेष हैं ॥ २३ ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

मांस के, लाख के और लवण के बेचने से ब्राह्मण जल्दी पतित होता है, और दूध के बेचने से तीन दिन में शूद्र होजाता है ॥ २४ ॥

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ।
तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ।२५

जो निचली जाती का लोभ से ऊंचे के कर्मों से जीविका करे उसको राजा निर्धन करके जल्दी ही निकाल दे ॥ २५ ॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ।
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥२६॥

अपना कर्म विगुण हुआ भी अच्छा है, न कि बेगाना चाहे बहुत अच्छा होसके, क्योंकि बेगाने कर्म से जीविका करता हुवा जल्दी जाति से पतित होजाता है ॥ २६ ॥

जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ।
आकाशमिव पंकेन न स पापेन लिप्यते ॥२७॥

प्राण संकट में पड़ा जो ब्राह्मण जहां तहां से अन्न खाता है, वह कीचड़से आकाशवत् पाप से लिप्त नहीं होता ॥ २७ ॥

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद् बुभुक्षितः ।
न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ।२८।

अजीगर्त भूख का मारा हुआ पुत्र के मारने को तय्यार हुआ, वह भूख दूर करने को ऐसा करने पर भी पापसे लिप्त नहीं हुआ ॥ २८ ॥

श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुं धर्माऽधर्मविचक्षणः ।
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् २९

धर्म अधर्म के जानने वाला वामदेव भूख से पीड़ित हो प्राणों की रक्षा के लिये कुत्ते के मांस को चाहता हुआ (पापसे) लिप्त नहीं हुआ ॥ २९ ॥

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ३०

महातपस्वी भरद्वाज पुत्र समेत भूख से पीड़ित हुआ निर्जन वन में वृधु तक्षण से बहुत सी गौएं दान लेता भया ॥ ३० ॥

क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ।
चंडाल हस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ।३१॥

धर्म अधर्म का जानने वाला विश्वामित्र भूख से पीड़ित हुआ चांडाल के हाथ से कुत्ते की टांग लेकर खाने को तैय्यार हुआ ॥ ३१ ॥

शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः।
प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते ३२

ब्राह्मण अपनी वृत्ति से न निर्वाह कर सक्ता हुआ, शिला और उञ्छ भी जहां तहां से लेलेवे, दान से शिला अच्छा है और उससे भी उञ्छ उत्तम है ॥

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥३३॥

विद्या (चिकित्सा आदि), शिल्प (हुनर, चित्र बनाना आदि) मजदूरी, सेवा, पशुरक्षा, व्यापार खेती, सन्तोष, भीख और ब्याज यह दस जीवन के हेतु हैं ॥ ३३

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् ।
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम्॥

ब्राह्मण वा क्षत्रिय ब्याज न लेवें, हां (अत्यन्त आपद् में) बहुत निचले पुरुष (सूतादि) को देवें, यह भी धर्म (पंचमहायज्ञादि के पूरा करने) के लिये, और वह भी बहुत थोड़े ब्याज पर देवे ।३४॥

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च ।
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः।

झूठा अन्न, पुराने कपड़े, अनाज का निलछट (वा चावलों की पिच्छ) और पुराने सामान (वर्तनादि देने चाहियें ॥ ३५ ॥

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ।

शूद्र में कोई पातक (जाति से गिराने वाला कर्म) नहीं होता है, न वह संस्कार (उपनयनादि) के योग्य है, न इसका (द्विजों के) धर्म में अधिकार है, न धर्म से प्रतिषेध है ॥ ३६ ॥

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मंत्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ।३७

(शूद्र) जो धर्म प्राप्ति की कामना वाले हैं, अपने धर्म को जानते हैं, वह यदि मंत्र को छोड़कर (और कामों में) आर्यों के आचार में स्थित होते हैं तो प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धन संचयः ।
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ।३८॥

धन कमाने में समर्थ भी शूद्र को धन का संचय नहीं करना चाहिये, क्योंकि शूद्र धन पाकर ब्राह्मणों को ही तंग करता है ॥ ३८ ॥

एषधर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥

यह चारों वर्णों के आपद् धर्म कहे हैं, जिनका पूरा २ अनुष्ठान करते हुए (चारों वर्ण) परम गति को प्राप्त होते हैं ॥ ३९ ॥

भजन नं० १

राम भज गूजरिये ऐसा दही बिलोर ॥ टेक ॥
मन कर मटकी तन कर मथनियां,
पाले प्रेम की डोर ॥ १ ॥
राम नाम का माखन कढले,
डाल डाल दे लोर ॥ २ ॥

यह बेला तेरे हाथ न आवे,
खरचेगी लाख किरोड़ ॥ ३ ॥
दुनी दास बड़ भागन गुजरी,
साध सङ्गत नहीं छोड़ ॥ ४ ॥

२

भोले बाबा बसो मेरी नगरी ॥ टेक ॥
तुमरे बैल को सेवा मंगादूं,
तुम को पिलाऊं भंग भरी गगरी ॥ १ ॥
जो गिरिजा पति जानत नाहीं,
तिनके करम धरम गये बिगरी ॥ २ ॥
देवी सहाय मगन निशि बासर,
शिव शिव नाम जपत पग पगरी ॥ ३ ॥

३

गुरु मेरे राम मिलावन हार ॥ टेक ॥
परम उदार परम मङ्गल मय,
अभिमत फल दातार ॥ १ ॥
टूटी फूटी नाव पड़ी मम,
भव वारिध की धार ॥ २ ॥
जयति जयति जयदेव दयानिधि,
बेगि उतारो पार ॥ ३ ॥

४

बोलो रे सन्तो अमृत बाणी,
बरसेगा कम्बल भीगेगा पानी ॥ टेक ॥
आग जले चूल्हा भैंभावे,
पोने वाले को रोटी खावे ॥ १ ॥
चलेगा मुसाफिर धकेगी बाट,
सोने वाले के ऊपर खाट ॥ २ ॥
आवेंगे कुत्ते भौंखेंगे चोर,
मरेंगे चमार घसीटेंगे ढोर ॥ ३ ॥
कहत कबीर सुनो तुम भाई ।
मछली के पेट में हथनी ब्याई ॥ ४ ॥

५

खेलत में को काको गुसैयां ॥ टेक ॥
हरि हारे जीते श्री दामा,
परवश ही कत करत रुसैयां ॥ १ ॥
जात पात हमसे बड़नाहीं,
ना हम बसत तुम्हारी छैयां ॥ २ ॥
अति अधिकार जनावत अपनो,
जाते अधिक तुम्हारे गैयां ॥ ३ ॥
रूंठ करे तासौं को खेले,
हा हा खात परत तब पैयां ॥ ४ ॥
सूरदास प्रभु खेलयो ही चाहे,
दाव दियो कर नन्द दुहैयां ॥ ५ ॥

६

आयो चरण तकि शरण तिहारी ।
नाथ करो मोहि अभय बिचारी ॥ टेक ॥
योनि अनेक फिरयो भटकाम्यों.
अब प्रभुपद छांडो न मुरारी ॥ १ ॥
मोसम दीन न दाता तुम सम,
भली मिली है यह जोरी हमारी ॥ २ ॥
मैं हौं पतित पतित पावन तुम,
पावन करो निज बिरद संभारी ॥ ३ ॥

७

राम राम गाओ सन्तो राम राम गाओ ।
राम नाम गाय गाय राम को रिझाओ ॥

राम ही को नाम जपो राम ही को ध्याओ।
राम राम राम कहत मगन होइ जाओ ॥ १ ॥
राम राम सुनि सुनाय, हिय अति हुलसाओ।
राम राम राम रटत सब विधि सुख पाओ ॥ २ ॥
राम नाम मद पीवो विषय मद भुला ो।
राम रस पीय पीय तनु सुधि बिसराओ ॥ ३ ॥
राम आदि मध्य राम राम अन्त आओ।
राम मय अखिल जगत राम में समाओ ॥ ४ ॥

८

गाइये महारानी श्री राधे ॥ टेक ॥
जाको नाम नेक मुख निकसत,
बिनशत कोटि २ अपराधे।
जाको ध्यान धरत योगी जन,
शिव बिरचि रहे लाय समाधे।
याही ते बृजराज युगल वर,
लाग्यो रहत नेह निशिदिन राधे ॥

९

देखी नहीं कोई तोसी हठीली ॥ टेक ॥
ज्यों २ मैं अब तोहि मनावत,
त्यों २ तू होवे अति गर्वीली।
ऐसे समय मन रोष न कीजे,
भौंहे कमान तनक कर ढीली।
नारायण उठ मिल प्रीतम सौं,
तज दे मान की बान छबीली ॥

१०

सांझ परे घर आये न कन्हैया
गोपी पूछें ग्वाल बालन सौं,
कहां गया मेरा बृज को बसैया।
घर रहे बछरु बन रही गैया,
यमुना किनारे ठाढी पशुमती मैया ॥
जाय पताल कालिनाग नाथ्यो,
फण ऊपर प्रभु नृत्य करैया ॥
लालदास प्रभु कहे कर जोरे,
चरण कमल परचित्त को धरैया ॥

११

लाल तेरे जादू भरे दोउ नैन।
चितवन में चितवश कर लेवें, मोहनी मंत्र है सैन।
अति बांके सुंदर अनियारे, मतवारे छवि ऐन ॥
नारायण उनके बिन देखे, पल छिन परत न चैन।

१२

मैया मैं गाय चारावन जैहों
तू कह नंद हर बाबासों, बड़ो भयो न डरैहों।
श्रीदामा आदि सखा सब अपने, और दाउ संग लैहों ॥
वंशी वट की शीतल छैयां, खेलत अति सुख पैहों।
देहु भात कामर भर लैहों, भूख लगे तब खैहों ॥
परमानन्द प्रभु तृषा लगे जब, यमुना जलहिं अचैहों।

१३

ब्रजब सिन पटतर कोउ नाहीं,
ब्रह्मा सनक शिव ध्यान न पावत,
तिनको जूठन लैलै खाहीं।
धन्य नन्द धन्य जननि यशोदा,
धन्य जहां अवतार कन्हाई ॥
धन्य २ वृंदावन के तरु,
जहं विहरत प्रभु बनराई।
हलधर कहत छाक जेमत संग,

मीठो लगत सराहन जाई ॥
सूरदास प्रभु विश्वम्भर है,
ग्वालन कौर खवाई ॥

१४

कहि न जाय छवि राधा वर की ।
चटकीलि उर माल विराजे,
मटकीलि गतिश्याम सुन्दरकी ॥ १
मोती लोल चारु नासा में,
चन्दनखौर आड़ केशर की ॥ २ ॥
अटक रह्यो मन ललित माधुरी ।
निरख लटक वा मुरलीधर की ॥ ३ ॥

१५

देखो आली ठाढे कदम की छैयं,
नन्द नन्दन वृषभान नन्दनी ।
दोउ दे रहे गलबैयां ॥ १ ॥
भूलगयो उन गागर उठायबो ।
बिसर इन गई गैयां ॥ २ ॥
ललित किशोरी प्रीति अति बढी,
दोउ जन लेत बलैयां ॥ ३ ॥

१६

पौढे श्याम जननी गुण गावत ॥
आज गयो मेरो गाय चरावन ।
यह कहि मन हुलसावत ॥ १ ॥
कौन पुण्य तप ते मैं पायो ।
ऐसो सुन्दर बाल कहावत ॥ २ ॥
हर्ष २ के देत सखन को ।
सूर सुमन की माल सहावत ॥ ३ ॥

१७

देखन दे मोरी बैरिन पलकें ॥ टेक ॥
निरख स्वरूप मदन मोहन बीच,
परत बज्जर सी सलनकें ।
आगे २ धेनु पछे नंद नन्दन,
गो चरन रज मण्डित अलकें ॥
कुण्डल करण कोटि रवि पसरे,
परत कपोलन में कछु झलकें ।
ऐसो स्वरूप निरख मेरी सजनी,
कटारी हिये इस पूत कमल के ।
नन्ददास जनन की यह गति,
तरफत मीन भाव बिन जलके ॥

१८

बृज पर नीकी आज घटा ॥ टेक ॥
नन्हीं २ बूंद सुहावनी लागत, चमकत बिद्यु छटा ।
गरजत गगन मृदंग बाजवत, नाचत मोर नटा ॥
गावत सुरहीं देत चातक फिक, प्रगट्यो मदन मठा ।
सब मिल भेंट देत नंदलालहिं, बैठे ऊंचि अटा ॥
चतुर्भुज प्रभु गिरधरन लाल सिर, कसुमी पीत पटा ।

१९

आई बदरिया बरसन हरी ॥ टेक ॥
गरज २ घन दामिनी दमकावे,
ज्यों चूनरि में झलके किनारी ।
मधुर २ कोयल बोले
भवन २ गावत बृजनारी ॥
चलत पवन शीतल नारायण,
परत फुहार लगत अति प्यारी ।

भक्ति के संरक्षक

१. राय बहादुर ला० सेवाराम जी एम. एल. सी, बार-ऐट-लॉ लाहौर १२५

. भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी

२. राय साहब श्री बल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट पटना १११)

३. राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला १०१)

४. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर १०१)

५. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा १०१)

६. श्रीमान् धाय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)

७. राव श्रीराम रईस नांगल ५१)

८. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)

९. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)

१०. राव निहालसिंह जी सूबेदार पान्हावास २५)

११. बा० स्वयम्भरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स पटना यू० पी०। २५)

१२. श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी २५)

१३. सेठ बनवारी लाल जी लोहिया, चावड़ी बाज़ार दिल्ली। २५)

१४. चौ० नेतराम साहब गिरदावर हलका जाटूसाना जिला गुड़गाँवा। २५)

१५. बख्शी चाननशाह एम. ए., एल. एल. बी. इन्कमटैक्स आफीसर जालंधर। २५)

१६. पं० मूलचन्द जी शर्मा अकाउण्टेन्ट हेड आफिस जयपुर २५)

१७. ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्यूनिस्पल कमेटी पलवल। ११)

२. महाशय शादीराम जी रसूलपुर, रेवाड़ी। ५)

३. बा० ब्रजलाल जी सिरस्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, जींद। ५)

४. राव बलवन्तसिंह जी मु० जैतपुर तहसील रेवाड़ी। ५)

५. श्रीमती सूरज देवी धर्म पत्नी चौ० ज़ोरावरसिंह जी शिशन जज अलीगढ़। ५)

६. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)

७. श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली। ५)

८. ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर। ५)

९. ला० भगवान दास जी, असिस्टेंट क्लर्क सैक्रेटरी इजलास खास आफिस संगरूर ५)

१०. महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदा सयान बल्लीमारान दिल्ली ५)

विक्र्यार्थ पुस्तकें ।

भ.प.फक्किका प्रकाश- इस पुस्तकमें बहुत ही सरल भाषामें तथा प्रश्नोत्तरके रूपमें सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ॥)

ज्ञानधर्मोपदेश-इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य -)॥।

वेदोपनिषद्रत्न-इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य ।-)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला-इस पुस्तकमें गीता और उपनिषदों से १०८ बहुतही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य -)॥

भगवद्गीता संस्कृत तथा टीका सहिता-इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय है फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथाकथक्कड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ॥=) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सारसंग्रह-इस पुस्तक के आदि में सुन्दर कण्ठस्थ करने योग्य महात्माओं की वाणियों का संग्रह है। पश्चात् मनोहर कवित्त और शब्दों का संग्रह है। पुस्तक प्रत्येक भक्त के संग्रह करने योग्य है। मूल्य १३६ पृष्ठकी पुस्तक का केवल =)

शब्द संग्रह-यह महात्माओं की वाणियों का उत्तम संग्रह है। भगवद्भक्ति विषयक अति उत्तम शब्दों का संग्रह है। मूल्य -)॥

भगवद्गीता-यह गुटका साइज में दशम अध्याय पर्यन्त छपा है। इस में मूल के साथ २ सरल पर्यायों सहित अन्वय है। पश्चात् सरल भाषा में अर्थ है। मूल्य ।-)

नोट:-१) से कम की पुस्तक मंगवाने वालों के पास वी० पी० भेजने का नियम नहीं है। कम दामों की पुस्तक मंगवाने वालों को टिकट भेजनी चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।